UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180780

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/V31P Accession No. G.H 1995

Author वर्मा, वृन्दावनलाल ।

Title फूलों की माला । 1947

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक—
सत्यदेव वर्मा बी. ए., एल एल. बी.
मयूर-प्रकाशन. झाँसी ।

प्रथमावृत्ति—१९४७

अनुवाद और चित्रपट निर्माण आदि के सर्वाधिकार लेखक के अधीन है ।

मूल्य—सवा रुपया

मुद्रक—
द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'
स्वाधीन प्रेस, झांसी ।

परिचय

विख्यात अरब-यात्री अलबेरूनी लगभग सन् १०३० में हिन्दुस्थान आया। उसने बहुत परिश्रम करके संस्कृत पढ़ी और देश के अनेक स्थानो को देखा। इस भ्रमण में वह उज्जैन भी गया। उज्जैन में उसने स्वर्ण-रसायन और व्याडि के सम्बन्ध की वह कहानी सुनी जिसका आधार यह नाटक है। अलबेरूनी इतना गम्भीर, और वर्तमान शताब्दि तक के लिए इतना विज्ञान-प्रबुद्ध है, कि उसकी यात्रा-पुस्तक "किताबुल हिन्द" में गपशप और क़िस्से-कहानी को बहुत ही कम गुञ्जाइश मिली है। स्वर्ण-रसायन के मोह और लोभ में, हमारे देश के कुछ लोग, कितने अन्धे हो जाते थे, व्याडि की कहानी ने उसको बतलाया। अन्य देशों में भी स्वर्ण-रसायन के लिए कुछ लोग सिरतोड़ प्रयत्न करते रहते थे इसका भी कथन अलबेरूनी ने इसी प्रसङ्ग में किया है। कहानी ऐतिहासिक हो या न हो, उसकी परम्परा ऐतिहासिक है और हमारे यहां आज भी कुछ मूर्ख सोना बनवाने के फेर में किस तरह अपने को लुटवा डालते हैं यह बहुधा सुनाई पड़ता रहता है। जिस प्रकार एक वेश्या ने अन्त में व्याडि की सहायता की, जैसा कि अलबेरूनी ने लिखा है, आजकल केवल यह नहीं सुनाई पड़ता है।

झाँसी के मेरे कुछ मित्र स्वर्ण-रसायन के मोह में बरसों पड़े रहे। इनमें से एक साइन्स जानने वाले भी थे! काफ़ी रुपया बिगाड़ा; व्याडि को तो विश्वास हो गया होगा कि केवल अपना पसीना ही सोना-चाँदी बना सकता है, परन्तु उनको यह नहीं सूझा, और वे अन्त तक उसके सहज लाभ में विश्वास करते रहे। एक दिन इनमें से एक मित्र ने स्वर्ण-रसायन के नुस्ख़ों की एक पोथी भी मुझको दिखलाई। बोले, 'बिजावर और पन्ना की घाटियों में कहीं कहीं ऐसा जल है जिसमें लकड़ी डाल दो तो, पत्थर हो जाती है!' इस जल का नाम उन्होंने 'शैलोदक' बतलाया।

मुझको हँसी आई और उनको थोड़ा सा क्षोभ। पन्ना और बिजावर की घाटियों में घूमते हुए मैंने लकड़ी का पत्थर में परिवर्तित रूप देखा है। परन्तु मेरे मित्र सरीखे लोग भूल जाते हैं कि भूगर्भशास्त्र ने इस परिवर्तन की आयु को लाखों-करोड़ों वर्ष का समय दिया है। लकड़ियों का यह पत्थर-रूप सोना बनाने की क्रियाओं के सच होने का प्रमाण माना जाता है! लकड़ी का पत्थर बन जाता है तो पलाश के पत्तों के रस से ताम्बा सोना क्यों नहीं बन सकता!! मेरे एक पड़ोसी को तो इतना विश्वास था कि सोना बनवाने के फेर में उन्होंने एक ठग के हाथों अपने घर के सारे गहने ही लुटवा दिए थे!!!

अलबेरूनी की अरबी पुस्तक "किताबुल हिन्द" का अनुवाद जर्मन भाषा में हुआ और जर्मन से अंग्रेजी में। पुस्तक दो भागों में है। पहले भाग में व्याडि की कहानी दी हुई है।

रसायन की किसी भी झल्लत में न पड़कर उस कहानी को जो रूप मैंने दिया है वही "फूलों की बोली" नाटक है।

झाँसी
११-२-१९४७

वृन्दावनलाल वर्मा

नाटक के पात्र

पुरुष—

माधव

पुलिन

सिद्ध

बलभद्र

न्यायाधीश, अधिकारी, सिपाही, उज्जैन निवासी इत्यादि

स्त्री—

कामिनी

माया

फूलों की बोली

पहला अंक

पहला दृश्य

[स्थान—उज्जैन नगरी मे कामिनी का सजा हुआ कमरा। कमरे में कई द्वार हैं। भीतर जाने के लिए एक खुला हुआ है। द्वारों पर विविध प्रकार के रंगबिरंगे पुष्पों के वन्दनवार लटक रहे हैं। एक कोनेमें चौकीपर चांदी का पानदान और पानी भरी चाँदी की सुराही रक्खी है। पीने के लिए उसी चौकी पर चांदी के कटोरे रक्खे हैं। दो कोनों पर ताम्बे के पात्रों में सुगन्धित धूप जल रही है। एक ओर एक चौड़े परन्तु छोटे पाए वाले मंच पर क़ीमती गलीचा बिछा हुआ है। तकियों के सहारे माधव और पुलिन बैठे हुए हैं। माधव की आयु २५ वर्ष के लगभग होगी। दृढ़ शरीर का सुन्दर युवक है। पुलिन की आयु उससे दो एक साल कम होगी। वह भी कम सुन्दर नहीं है। माधव की आंख में सरलता और दृढ़ता है। पुलिन की आंख में कभी कभी कुटिलता झाई मार जाती है। दोनों व्यवसायी हैं और धनाढ्य। माधव के पास अधिक धन है। दूसरी ओर एक

और बड़ा मंच है। उसके भी पाए ऊँचे नहीं हैं। उस पर भी बहुत बढ़िया गलीचा है, परन्तु तकिए नहीं है। इस मंचपर कामिनी और माया ज़रा अन्तर से बैठी हुई हैं। कामिनी के हाथ में तम्बूरा है और माया के हाथ में मँजीरे। दोनों बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहिने हैं। दोनों यौवनावस्था में हैं और बहुत रूपवती हैं। माया के नेत्रों में मादकता है और आकर्षण। कामिनी की आँखों में सहज ओज, दृढ़ता और आवाहन करने वाले के लिए छिपा हुआ तिरस्कार है। कामिनी गा रही है, माया मँजीरे बजा रही है। वह बीच बीच में गाती भी है। यह भवन माया का नहीं है। दोनों पड़ोस में रहती हैं। एक दूसरे के यहां आती जाती हैं। आज वसन्तोत्सव मनाने के लिए दोनों इकट्ठी हुई हैं। माधव और पुलिन उस समय के चलन के अनुसार कामिनी और माया के नृत्यगान के लिए आए हैं। वे दोनों गायिकाएँ हैं और कुमारी हैं। केवल गाना नाचना उनका व्यवसाय है, परन्तु इस व्यवसाय को वे अपने घर पर ही करती हैं। समय—सन्ध्या के उपरान्त। कमरे में शमादानों में बत्तियों का अच्छा प्रकाश हो रहा है। उस प्रकाश में उन चारों के केशों का तेल और कामिनी तथा माया के वस्त्रालंकार जगमगा रहे हैं। गाने के बीच में माधव और पुलिन एक एक बार पानी पीने के लिए उठते हैं और कनखियों उन लोगों को देखते हैं।]

गान

फूलों से लद गई चाँदनी,
नीले पट पर दमक सँजोई,
नव द्रुमदल पर कसक भिगोई;
भूलों पर थक गई कामिनी
फूलों से लद गई चाँदनी।

माधव—(*फूलों से सजे हुए द्वारों को देखकर*) आपने जिस तरह द्वारों को फूलों से सजाया है उसी तरह गाने के एक एक अङ्ग को कैसी सुहावनी तानों से चमका दिया है।

माया—घण्टों क्या, पहरों, ये अभ्यास किया करती हैं, और फिर भी कहती हैं अभी बहुत कसर है।

कामिनी—द्वारों के वन्दनवारों पर फूल सजाने में माया ने इतना श्रम किया है कि मैं तो दङ्ग रह गई।

पुलिन— देखिए न, अलसी, सरसों, पाटल, गेंदा, मचकुन्द, तमाल, मल्लिका, कुमुद, कामिनी की अलग अलग और मिश्रित मालाएँ बना बनाकर किस उत्साह के साथ वसन्त का स्वागत किया जा रहा है।

माधव—किस रंग-बिरंगेपन के साथ! और वैसा ही रंग-बिरंगापन तानों में भी!! वन्दनवारों के फूल चुपचाप कुछ कह रहे हैं—इनकी तानों की कलियां भी चिटक चिटककर कुछ कह रही हैं। उन फूलों की बोली चाहे समझ में आ जाय, पर इनकी कलियों के नाद में मन उलझ उलझ जाता है। मन उस नाद को कान में बांधने का बार बार प्रयत्न करता है, परन्तु वह हृदय में सरक कर फिर न जाने कहां विलीन हो जाता है और न जाने छिपे छिपे कहां से आत्मा को झकझोरता है।

कामिनी—मेरे श्रम का यही बड़ा पुरस्कार है कि मेरी तान आपके मन पर रीझी।

माधव—तान मेरे मन पर रीझी! या मेरा मन आपकी तान पर सुधबुध हरा गया!! सोने से इन तानों का मोल आंका नहीं जा सकता। तो भी......

कामिनी—(*मुस्कराकर*) सोना तो मैं आपसे बहुत पा चुकी हूं।

माधव—जिस कण्ठ से मधुरता बरसाने वाले ऐसे स्वर निकलते हैं उसकी सजावट के लिए हीरे होने चाहिए।

कामिनी—परन्तु हीरे तो बहुत दुर्लभ हैं। क्या करना है। आपको मेरा गाना रुचता है मेरे लिए यही बहुत है।

पुलिन—हीरे दुर्लभ हैं! हां, असम्भव नहीं हैं, दुर्लभ अवश्य हैं।

माधव—न असम्भव हैं और न दुर्लभ। देखूंगा। माया, तुम भी बहुत अच्छा गाती हो। वसन्तोत्सव के उपलक्ष में तुम पर भी बहुत कुछ न्योछावर होना चाहिए।

पुलिन—माया को क्या एक पल भी भुलाया जा सकता है!

माया—मुझको भी पुरस्कार मिलते ही रहते हैं, परन्तु मेरी साध है कि कामिनी के बराबर गा सकूं।

कामिनी—और मैं तुम्हारी तरह का नृत्य कर सकूं।

माधव—(*मुस्कराकर*) हां तो अभी आप लोगों का नाच भी होगा। घुंघरू कहां हैं?

कामिनी—आजायगी।

पुलिन—अपने आप?

माधव—दोना भीतर से पहिनकर नाचती हुई आओ तब बात है।

कामिनी—फिर?

माधव—फिर! फिर देखा जायगा।

(*दोनो जाती हैं*)

पुलिन—दोनों सुन्दर हैं, दोनों कलाकुशल हैं।

माधव—हां। कामिनी सूर्य की तरह ओजभरी और माया चन्द्रमा की तरह शीतल है—केवल इतना अन्तर है।

पुलिन—मुझको तो चन्द्रमा की मधुरता प्यारी लगती है।

माधव—अपने अपने अवसर पर दोनों सुहावने लगते हैं। मेरे लिए दोनों एक से। मुझको तो फूल का गन्ध और रूप प्यारा लगता है। बस।

(कामिनी और माया घुंघरू बांधकर नाचती हुई आती हैं)

पुलिन—उसी गान के साथ।

(वे दोनों नृत्य के साथ गाती हैं)

माधव—(*नृत्य और गान की समाप्ति पर*) किसी दिन हीरों का कण्ठा अवश्य भेंट करूंगा।

पुलिन—और मैं माया को मोतियों की करधोनी।

कामिनी—मोतियों की करधोनी इनको लगेगी भी भली।

माधव—कामिनी को मोतियों की करधोनी भी दी जायगी।

पुलिन—(*अनमना होकर*) आप स्वर्ण बनाना सीख गए हैं इसलिए आपके लिए सब सुलभ है।

माधव—सीख तो नहीं गया हूँ। सीख रहा हूं अवश्य।

पुलिन—वैसे भी आपका व्योपार पूरी चमक पर है। लोगों की कल्पना है कि आप स्वर्ण-रसायन जानते हैं।

माधव—जितना स्वर्ण चाहिए है उतना व्योपार से हाथ नहीं पड़ता इसीलिए रसायन के प्रयोगों में जुटा रहता हूँ।

पुलिन—मेरा धन्धा उतना बड़ा नहीं है। तो भी काफ़ी ख़र्च करता रहता हूँ। चाहता हूं मुझको भी स्वर्ण-रसायन आ जाय।

माया—माधव स्वर्ण बनाने की विधियाँ कहीं लिखते रहते हैं। किसी दिन हम लोगों को भी बतला देंगे?

कामिनी—विद्या अत्यन्त गोपनीय है। बतला देने से निकम्मी हो जाती है।

पुलिन—परन्तु बतला देने से इनके नृत्य गान की कला तो और भी अधिक निखरती उभरती होगी।

माधव—(उपेक्षा के साथ) कहां रसायन का शास्त्र और कहां सङ्गीत-कला।

कामिनी—(मुस्कराकर) तो आप बिचारी सङ्गीत कला पर इतना स्वर्ण क्यों बरसाया करते हैं? और लोग भी क्यों उस पर इतना मोह बहाते रहते हैं?

माधव—और लोगों की वे लोग जानें। मैं तो कला की मूर्ति पर सोने को न्योछावर किया करता हूँ।

कामिनी—परन्तु पुरस्कार देते समय आप लेते तो कला का नाम हैं। उसकी बारीकियों को बतलाते बतलाते उकताते भी नहीं।

माधव—क्योंकि उस कला का संबन्ध आपसे है। मैं माया के लिए भी यही कहूँगा।

पुलिन—माया का सा नृत्य उज्जैन भर में कोई नहीं नाच सकता।

कामिनी—एक बात तो सच मिली।

माधव—मैंने शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन पांचों के मेल की बात कही थी।

कामिनी—जब तक डाल पर है तभी तक फूल की शोभा है।

माधव—(मुस्कराकर) फिर कभी बतलाऊंगा।

पुलिन—मैं चलूं। मैंने रस, गंध और स्पर्श के घोल की बात नहीं की।

(जाने के लिए उठता है)

कामिनी—मैं आपको इस भ्रम में लिपटा हुआ नहीं जाने देना चाहती हूँ। मेरी कला का सम्मान उज्जैन और मालवा में तभी तक है जब तक मेरे शरीर के स्वास्थ्य का उसको आधार प्राप्त है। यह आधार मेरी कला को मेरे अन्त समय तक मिलता रहेगा।

माधव—यही मैं भी चाहता हूँ। आप ग़लत समझीं। मेरी इच्छा है आपके पास इतना धन हो जाय कि आप एकाग्र होकर कला की सेवा करती रहें—और हर किसी को सुनाने या दिखलाने की आपको अटक न रहे।

माया—जब आपका रसायन शास्त्र पक्का हो जाय तब हम लोगों को भी बतला दीजिएगा। फिर हम अपनी कला को और भी सम्पूर्ण और सुन्दर बनावेंगी।

माधव—हीरों का कंठा और मोतियों की करधोनी सुलभ हैं, परंतु शास्त्र सहज नहीं है।

(नेपथ्य में किवाड़ खटखटाने का शब्द होता है)

पुलिन—कोई बुला रहा है।

माया—हमारे कला भवन का कोई पुजारी होगा। देखूं कौन है।

(जाती है और सिद्ध को साथ लेकर आती है। सिद्ध लगभग चालीस वर्ष का हट्टा कट्टा मनुष्य है। गेरुआ वस्त्र पहिने है। जटा रखाए हुए है, परन्तु दाढ़ी और मूछ नहीं है। कुछ वेश शैवों जैसा, कुछ बौद्ध भिक्षुओं सा।)

सिद्ध—*(माधव से)* अरे व्याडि यहां पर!

माधव—*(बिना किसी उत्तेजना के)* यहां पर मैं इस नाम से नहीं आता हूँ। अनन्त वसन्त का सखा होने के कारण कला भवन में मेरा नाम माधव हो जाता है।

(सिद्ध को आदर पूर्वक बिठलाया जाता है)

सिद्ध—माधव! माधव अच्छा नाम है। परन्तु व्योपार और बही-खातों में व्याडि नाम ही चलता होगा?

माधव- यहां पर आप बहीखातों वाले व्यडि को नहीं देख रहे हैं, किंतु कला पर रीझने वाले माधव को। परन्तु सिद्धराज और कला! यह

संयोग समझ में नहीं आया। अथवा सिद्धराज यहां किसी मन्त्र की दीक्षा देने आए हैं?

कामिनी—(*मुस्कराकर*) स्वर और ताल के अधिकार में ही तो मंत्र अपनापन प्रकट करते हैं।

सिद्ध—मेरी रसायन को कामिनी की कला—माया के नाच और कामिनी के गान—से स्फूर्ति मिलती है।

पुलिन—(*हँसकर*) जैसी हम लोगों को अपने व्योपार के लिए फुरेरू।

सिद्ध—(*भौंह को सिकोड़कर और फिर ढीली करके*) तो अब कुछ सुनने को मिलना चाहिए। (*आश्चर्य के साथ*) और ये दोनों घुँघरू भी बांधे हैं।

कामिनी—हां, हां, सुनिए सिद्धराज!

(*कामिनी और माया का नृत्य-गान*)

गान

अब आओ, अब आओ;
वन उपवन सब हरे हुए हैं,
नदी सरोवर भरे हुए हैं,
तनमन व्याकुल हुए जा रहे,
मंजुल पल सब चले जा रहे,
पलक पांवड़े सजा दिए हैं,
नूपुर ने स्वर बजा दिए हैं,
अब आओ, अब आओ।

पुलिन—थोड़ी देर पहले जैसा नाचा गाया था इस बार उससे भी बढ़कर हुआ।

सिद्ध—परन्तु हम बाबा वैरागियों के पास आशीर्वाद के सिवाय और देने को कुछ नहीं।

माधव—इस पर भी आपका रहन-सहन और खर्च किसी राजा से कम नहीं है।

सिद्ध—आप लोगों का ही दिया हुआ तो है।

पुलिन—यह बात नहीं है। सब जन जानते हैं कि आप दान नहीं लेते।

कामिनी—*(उत्सुकता के साथ)* लोग कहते हैं कि आप रसायन जानते हैं!

सिद्ध—*(आत्मसंतोष के साथ)* लोगों का मैं क्या करूँ? उनसे क्या कहूं!

माधव—सुना तो मैंने भी है।

सिद्ध—मान लीजिए मैं जानता हूँ।

माधव—तो मैं विनय करता हूँ कि सुपात्र को बतला दीजिए।

माया—यहां कुपात्र तो कोई भी न होगा।

कामिनी—और मुझको पुरस्कार स्वरूप यदि आप रसायन का मन्त्र दे दें तो......

सिद्ध—तो भी आपकी कला बची रहेगी?

कामिनी—*(दबे हुए अभिमान के साथ)* कला ने यदि मेरे साथ जन्म लिया है तो वह मेरे मरने तक साथ देगी।

सिद्ध—*(सिर हिलाकर)* आप अवश्य पुरस्कार के योग्य हैं। रसायन जानने के लिए बहुत तपस्या करनी पड़ती है। मुझको मालूम है व्याडि—माधव, माधव,—कितना उद्योग करते चले आ रहे हैं।

माधव—परन्तु मैं सफल अभी तक नहीं हुआ।

सिद्ध—(*हँसकर*) व्याडि से माधव तो हो गए !

माधव—यह कामिनी की कला की देन है । मैं अपने को सदा माधव नाम से पुकारा जाना पसन्द करूँगा । परन्तु जो रसायन, जान पड़ता है, आपके पास है उसके कारण सिद्ध, माधव से भी, ऊपर है ।

कामिनी—इस शास्त्र को जानने के लिए किस प्रकार की सुपात्रता चाहिए ?

सिद्ध—जैसी आप में है ।

कामिनी—(*प्रसन्न होकर*) आप मुझको बतलावेंगे ?

सिद्ध—अवश्य ।

माधव—और मुझको ? यदि आप मुझको बतलावेंगे तो मैं उसका जन-हित के लिए पूरा उपयोग करूँगा ।

सिद्ध—बतला तो मैं दूँगा, परन्तु तपस्या करनी पड़ेगी । रसायन का मन्त्र बीजरूप में आप सबको बतलाए देता हूं । उसका वास्तविक रूप समझने के लिए तप करना पड़ेगा । आकाश पाताल के सिरे मिलाने होंगे ।

माया—(*हाथ जोड़कर*) तो बतलाइए न सिद्ध महाराज, फिर यदि हमारे भाग्य और हमारे तप ने मेल खा लिया तो हम लोग कला को इतनी ऊँचाई पर पहुंचा देंगी कि सङ्गीत के बड़े बड़े आचार्यों को दांतों तले अँगुली दबानी पड़ेगी ।

सिद्ध—(*आंखें मूंदकर*) बीज रूप में मैं आप सबको रसायन की बात बतलाए देता हूँ, परन्तु उसका रहस्य (*आँखें खोलकर*) अकेली कामिनी को बतलाऊँगा ।

(*कामिनी की आंख में तिरस्कार उमड़ता है, परन्तु वह उसको रोक लेती है*)

कामिनी—आप कब बतलायेंगे, सिद्धराज ?

सिद्ध—(*मुस्कराकर*) कल दोपहर को एकान्त में ।

माधव—इस समय बीजरूप में ही रसायन का मन्त्र बतला दीजिए ।

सिद्ध—प्रण करो कि और किसी पर प्रकट नहीं करेंगे । सब प्रण करो ।

सब—नहीं प्रकट करेंगे ।

सिद्ध—अच्छा तो सुनो । सावधान होकर याद रखना । पाटल पुष्प के पत्तों का रस तमाल पुष्पों को खरल करके मिलाओ । मल्लिका की लकड़ी की आग में फूकने से सब का सब स्वर्ण हो जायगा ।

पुलिन—इसमें बीजमंत्र क्या रहा ? आपने तो सारी की सारी क्रिया बतला दी !

(*कामिनी कुतूहल के साथ सिद्ध की ओर देखती है । माधव मन ही मन चिढ़ता है*)

माधव—इन पुष्पों में भारीपन तो कहीं भी नहीं है । इनसे स्वर्ण कैसे बन जायगा ? कामिनी, आपको क्या विश्वास होगया है ? मैंने अनेक प्रयोग किए हैं । रङ्ग तो स्वर्ण जैसा आ जाता है, परन्तु धातु स्वर्ण की जैसी नहीं बन पाती है ।

सिद्ध—(*व्यङ्ग की आकृति करके*) यदि गुरु सारी क्रिया यों ही बतला दे तो चेला गुरु के बाल नोच उठे । इसीलिए कहा कि तपस्या करनी पड़ेगी । बिना तपस्या के कुछ नहीं बनेगा, कुछ नहीं मिलेगा ।

कामिनी—आपकी बात के भीतर कोई रहस्य छिपा हुआ है ।

सिद्ध—(*तेज़ होकर*) अवश्य । इस रसायन से स्वर्ण बनता है । दूसरी के द्वारा स्वर्ण से मोती और हीरे बन सकते हैं । हरसिंगार के फूलों का चूर्ण अलसी के नीले फूलों के रस में मन्दार और विष्णुकान्ता की लकड़ी की आग से तपाकर जब स्वर्ण को समेटलेता है तब वह स्वर्ण

हीरा बन जाता है। मोती श्वेत फूलों वाली कटहरी के रस और करोंदी के फूलों के चूर्ण के संयोग से बन जाते हैं।

माधव—श्वेत फूलों वाली कटहरी के रस के संसर्ग से सोना बनने की बात तो मैंने भी सुनी है, परन्तु करोंदी और कटहरी के फूलों के मेल से मोतियों का बनना विलक्षण जान पड़ता है।

सिद्ध—(*सावधान होकर*) विलक्षण तो सारी की सारी रसायन ही है। आपने कभी रत्ती भर भी सोना बना पाया ?

माधव—नहीं बना पाया और न आपकी बताई हुई उतनी क्रिया से ही कभी बना पाने की आशा है।

पुलिन—सिद्धराज, माधव ने बहुत प्रयोग किए हैं और वह एक पोथी में अपने प्रयोगों को टीपते भी रहते हैं।

सिद्ध—पुस्तक इस विषय पर ऋषि नागार्जुन की ही थी। वह छिन्नभिन्न होकर नष्ट हो गई है। उसकी कुछ बातें हम सरीखे थोड़े से बाबा-वैरागियों के पास रह गई हैं। बीजरूप में मैंने बतला भी दिया है—आप लोगों को सुपात्र जानकर।

माधव—मुझको तो यह बीज रूप ब्याज रूप जान पड़ता है—बिलकुल आड़ा टेढ़ा। कूटक सा। इन पुष्पों के नामों के पीछे कुछ और है।

सिद्ध—सो तो है ही। उनके पीछे जो कुछ है उसको समझने के लिए गुरु की कृपा और अपनी तपस्या की आवश्यकता है। नागर्जुन का एकाध उपचार देखना हो तो मेरे साथ चलो। कहोगे यह तो इन्द्रजाल है, परन्तु वास्तव में वह सब विज्ञान है।

पुलिन—कब दिखलायंगे सिद्धराज, आप उस उपचार को ?

सिद्ध—अभी। कहा न मैंने ?

माधव—कल दिन में ?

सिद्ध—यही तो नासमझी है। कुछ प्रयोगों का दिनमें दिखलाया जाना वर्जित कर दिया गया है। (*उमंग के साथ*) कल दिनमें कामिनी को स्वर्ण रसायन की क्रिया भी बतलाऊँगा और सोना, हीरा बनाकर भी दिखलाऊँगा।

कामिनी—(*उत्साह के साथ*) धन्यवाद, सिद्ध महाराज। मैं श्रद्धा के साथ आपकी शिष्या बनजाऊँगी।

सिद्ध—मैं शिष्य किसी को नहीं बनाता—परन्तु ख़ैर, देखा जायगा। कल दोपहर तक की तो बात ही है।

कामिनी—मुझको धीरज है सिद्ध महाराज।

माया—महाराज, मेरे ऊपर भी कृपा की जाय।

सिद्ध—मैं आपके नृत्य पर प्रसन्न हुआ हूं, आप भी प्रस्तुत रहना। आपका घर तो निकट ही है।

माया—हां पास ही रहती हूं। आप जानते होंगे।

सिद्ध—(*पुलिन से*) आपके यहां क्या काम होता है?

पुलिन—वही जो व्याडि—माधव के यहां होता है। मेरे यहां भी टाड़ा लदता है, परन्तु यह नगर सेठ हैं और मैं छोटी सी पूंजी वाला हूं।

माधव—नहीं सिद्धराज, इनका काम मेरे टक्कर का है। व्यवसाय में मेरा इनका द्वन्द्व भी हो जाता है, परन्तु हम दोनों कला के पुजारी हैं। यहां पर हम दोनों इकट्ठे हो जाते हैं और कला पर श्रद्धाञ्जलि चढ़ाने में हम दोनों की होड़ सी लगजाती है।

सिद्ध—ये दोनों आगे ऐसी समर्थ हो जायंगी कि इनको किसी की भी अञ्जलि की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

माधव—(*निहोरे के साथ*) कामिनी, क्या उस स्थिति में हम लोगों को कला दुर्लभ हो जायगी?

कामिनी—(*मुस्कराकर*) नहीं। कला को सुलभ करने के लिए ही मैं सिद्ध महाराज की शिष्य होने जा रही हूँ।

माया—और मैं भी। क्यों न सिद्ध महाराज ?

सिद्ध—हां।

पुलिन—हम लोगों पर भी अनुग्रह किया जाय।

सिद्ध—आप लोगों को तपस्या करनी पड़ेगी। अभी आपको गुरु-वचन पर विश्वास नहीं है।

पुलिन—मुझको तो पूरा विश्वास है।

माधव—मुझको विज्ञान पर विश्वास है, इसलिए विज्ञानी गुरु के ऊपर भी।

सिद्ध—अर्थात् आपको पहले से श्रद्धा अर्पित करने की बान नहीं है। तो आइए, अभी मेरे आश्रम पर।

माधव—महाकालेश्वर के मन्दिर के पास ही आश्रम है न आपका ? आप अकेले हैं या कोई शिष्य साथ में है ?

सिद्ध—मेरे साथ शिष्य विष्य कोई नहीं। वैसे वहां रहते अनेक लोग हैं। पर मैं मिलूँगा एकान्त में ही।

माधव—इन दोनों को (*माया और कामिनीकी ओर संकेत करके*) आप बिना तपस्या के ही क्यों रसायन बतलाने जा रहे हैं !

सिद्ध—(*तेज़ होकर*) मेरा मन। (*मुस्कराकर*) कौन कहता है इन्होंने तपस्या नहीं की ? पूर्वजन्म में की है। और इस जन्म में संगीत-कला की आराधना जैसी इन लोगों ने की है, वैसी क्या और किसी ने की है ?

पुलिन—बात तो ठीक कहते हैं सिद्धराज।

सिद्ध—(*उठकर*) मैं चलता हूँ। मुझको एक घड़ी मन्त्रजाप करना पड़ेगा। एक घड़ी उपरान्त आश्रम पर आ जाओ। दिया जलता हुआ मिलेगा। मैं द्वार पर मिल जाऊँगा।

(*उपेक्षा के साथ जाता है*)

माया—सिद्ध के नेत्रों में कितना चमत्कार है ?

माधव—बातों में अधिक।

कामिनी—परीक्षा न कर लीजिए।

माधव—मैं जा रहा हूँ। आप भी चलेंगे पुलिन ?

पुलिन—अवश्य, यदि आपके मन में कोई बाधा न हो तो।

माधव—जब आपके सङ्ग में यहां आने में कोई बाधा नहीं मालूम होती, तब सिद्ध के आश्रम पर जाने में क्या बाधा खड़ी हो सकती है ?

(*इस बात के कहने पर माधव मन में पछताता है और उसका चेहरा गिर जाता है*)

कामिनी—आप हमारे कला भवन का अपने मन के मनमें जो आदर करते हैं वह इस बात से अच्छी तरह प्रकट हो गया है। इसीलिए मैं शब्द और रूप तक अपनी कला को सीमित रखती हूँ। इसीलिए मैं रस, गंध और स्पर्श के मेल को बुरा समझती हूँ। अब आप मेरे भाव को समझ गए होंगे। मैं स्वर्ण को इतना परवाह नहीं करती जितनी अपनी कला की परखकी। यदि मैं कल भिखारिन हो जाऊँ तो भी मैं अपनी कलापर रीझ रीझकर जन्म काट लूंगी। आप स्यात् मुझको साधारण गायिका, नर्तकी या वेश्या समझते हैं ?

माधव—मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ कामिनी। मेरा यह प्रयोजन नहीं था।

कामिनी—प्रयोजन कुछ भी रहा हो, परन्तु आपके शब्दों में कोई भ्रम न था।

माधव—मैं अकेले में कुछ निवेदन करना चाहता हूं।

पुलिन—(*उठते हुए*) मैं घर पर मिल जाऊंगा—यानी यदि आप मुझको साथ ले जाना चाहें तो।

माधव—मैं आपको लेता चलूँगा। अभी आता हूं।

माया—मैं भी जाती हूँ। (*गमनोद्यत*)

कामिनी—परन्तु अकेले में आप और क्या कहेंगे? जो कुछ कहना है सब के सामने कह डालिए।

माया—वे अकेले में कुछ कहना चाहते हैं। सुन लीजिए, डर क्या है?

कामिनी—डर! डर मुझको किसी बात का नहीं। अच्छा, अकेले में सुने लेती हूँ।

(*माया और पुलिन जाते हैं*)

माधव—मैं सच कहता हूं, सौगन्ध खाकर सच कहता हूँ कि मेरा तात्पर्य केवल यह था कि मैं अपने प्रेम-मन्दिर तक में किसी के साथ आ सकता हूँ तो एक बाबा बैरागी के आश्रम पर पुलिन के साथ जाने में मुझको हिचक ही क्या हो सकती है?

कामिनी—(*उत्तर से किंचित भी सन्तुष्ट न होकर*) परन्तु यह घर आपका, या किसी का भी प्रेम-मन्दिर नहीं है। कला की चाह की ओट में आपने क्या से क्या समझ लिया है?

माधव—मैं कला का ही प्रेमी सही।

कामिनी—कला के लिए ही मेरी कला है।

माधव—जीने भर के लिए ही मेरा जीवन नहीं है और न केवल कला के लिए ही आपकी कला है। ऐसी बात सुनकर मुझको दुख होता है।

कामिनी—दुखी मत होइए। आपने जोकुछ आजतक दिया है उसको लौटा लीजिए। दान और प्रतिदान का अनुपात होता है। देने और उस के बदले में लेने की तौल सम होती है। आप अपने देनेके बदले में मेरा सर्वस्व नहीं ले सकते।

(कामिनी क्षोभ के कारण कांपने लगती है)

माधव—आप मेरे साथ अन्याय कर रही हैं।

कामिनी—*(यह सोचकर कि शायद अन्याय किया है, न्याय करने की प्रेरणा से, परन्तु क्षोभ से विचलित होकर)* आप मुझको साधारण नगर-वधू कहकर लज्जित नहीं हुए ?

माधव—न मैं ऐसा समझता हूँ और न मैंने यह कहा है। जो बात कहना नहीं चाहता था, वह कहता हूँ—मैं आपके साथ विवाह करना चाहता हूं, धर्मपत्नी का पद देना चाहता हूं। अब आपको मेरी बात समझ लेनी चाहिए।

कामिनी—(*स्थिर होकर*) मैं सोचती हूँ मैंने आपके साथ कुछ अन्याय किया है। (*शान्त होकर*) परन्तु विवाह नहीं करूंगी। मैं बन्धन में नहीं पड़ सकती। अपनी कला को बन्दीगृह के भीतर नहीं जकड़ सकती।

माधव—विवाह तो नर-नारी का गौरव है। प्रकृति और मनुष्य का समन्वय।

कामिनी—तो आप मेरी कला पर मुग्ध नहीं हैं, वरन मेरी देह और उसकी सीधी टेढ़ी रेखाओं पर मुग्ध हैं। मैं अब तक अपनी कला का अभिमान किया करती थी। आगे, आज है और कल नहीं-वाली देह पर घमण्ड किया करूंगी। आपको रुचेगा ?

माधव—नहीं तो। मैं आपकी जिस कला को अपना प्राण समझता आया हूँ उस कला की साधना के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करने को तैयार हूँ और रहूँगा।

कामिनी—फूल पर ओस का कण सबेरे की रश्मि से चमक उठता है, दोपहर की किरणों मे झुलस जाता है।

माधव—(कुछ साहस के साथ) परन्तु दूसरे दिन फिर ओस का कण उसपर आ जाता है और रश्मि उसको फिर चमका देती है।

कामिनी—(*ज़रा रूखी होकर*) आप कहा करते हैं फूल का सौंदर्य जीवन की निधि है, जीवन को सजग बनाए रखने का साधन है। कहते हैं न आप ऐसा ?

माधव—(*भूला हुआ सा*) कहता तो हूं।

कामिनी—फूल को तोड़ते ही जीवन की निधि और सजगता उसका साथ छोड़ देगी। क्या आप फूल को छिन्नभिन्न करेंगे ?

माधव—(*निश्चय के साथ*) कभी नहीं।

कामिनी—तो फिर विवाह की बात मुझसे कभी मत करना। मैं यदि अपनी देह और आत्मा को किसी रसायन द्वारा केवल कला में बदल पाऊँ तो समझूँगी मुझको सब कुछ मिल गया।

माधव—आपने मुझको निरे व्याडि से माधव बना दिया। जब आप केवल कला का निर्मल निर्झर बन जायंगी तब मैं माधव से और क्या बनूँगा, कह नहीं सकता। परन्तु आपका जैसा अनुराग—या अनुग्रह—अभी तक रहा है, वैसा ही बना रहे।

कामिनी—यदि आप वचन दें कि विवाह की बात कभी नहीं करेंगे तो कदाचित्......

माधव—क्या मैं पूछ सकता हूं कि विवाह का निषेध केवल मेरे लिए ही है अथवा पुरुष मात्र के लिए ?

कामिनी—हु। जब मैं सोने के पात्र से भी जल पीने से नाहीं करती हूँ तो मिट्टी के ठीकरों की बात ही क्या है !

माधव—(*मन ही मन प्रसन्न होकर*) केवल एक बात की याचना करता हूँ। मेरे साथ जैसा बर्ताव अभी तक चला आया है वैसा ही आगे भी रक्खा जाय। और, यदि कभी हीरों का कण्ठा और मोतियों की करधोनी भेंट कर सका तो उनके स्वीकार करने से नाहीं न की जाय। मैं मान लूँगा जैसे आज कुछ हुआ ही न हो; जैसे अखरने की मैंने कोई बात ही न कही हो; जैसे मानो हम दोनों सदा जैसे थे वैसे ही है।

कामिनी—(*मुस्कराकर*) बर्ताव वैसा ही रहेगा।

माधव—(*हर्ष के साथ*) मैं सब कुछ पा गया। मुझको और कुछ नहीं चाहिए। (*जाते जाते*) नमस्ते। ज़रा उस सन्यासी को देखूँ।

(*जाता है*)

दूसरा दृश्य

[*स्थान—उज्जैन में महाकालेश्वर मन्दिर के पास सिद्ध का आश्रम। आश्रम का दरवाज़ा बन्द है। समय रात्रि। सिद्ध आता है और सांकल खटखटाता है। एक बड़ी बत्ती वाला दिया लिए हुए बलभद्र आता है। बलभद्र लगभग १६ वर्ष का सुन्दर लड़का है। केश उसके बड़े बड़े हैं*]

बलभद्र—गुरु महाराज, पालागन।

सिद्ध—चिरजीवी हो। थोड़ी ही देर में अपने यहां कुछ लोग आने वाले हैं।

बलभद्र—कितने लोग ?

सिद्ध—दो भद्र पुरुष। वेदी तैयार है ?

बलभद्र—तैयार हो जायगी। विलम्ब नहीं होगा गुरु महाराज।

सिद्ध—दिया पौर में रखदो । पौर में ही कुछ करना है। वेदी कहां है ?

बलभद्र—पौर में गड्ढा बना हुआ है । वेदी बनते देर नहीं लगेगी। क्या बात है ?

सिद्ध—पौर में बात करेंगे ।

[*सिद्ध पौर में जाता है । बलभद्र दिये को ऐसे रखता है जिससे बाहर तक प्रकाश जाता है*]

बलभद्र—आज्ञा हो गुरु महाराज ।

सिद्ध—यहां का नगर सेठ स्वर्ण बनाने के मोह में है । वह कोरा विज्ञानी नहीं है । एक स्त्री के प्रेम में प्रमत्त होकर उसने अपना नाम व्याडि से माधव कर लिया है । व्याडि अर्थात इस माधव ने उसका घर स्वर्ण से भर दिया है । उस स्वर्ण पर न तो उस स्त्री का अधिकार है और न उस पुरुष का । समझे ?

बलभद्र—नहीं समझा गुरु महाराज ।

सिद्ध—स्वर्ण बनाने की क्रिया मुझको मालूम है । व्याडि अर्थात माधव उस क्रिया को मुझसे सीखना चाहता है ।

बलभद्र—अभी तक मुझे तो सिखलाई नहीं गई है, यह माधव कैसे सीख लेगा ?

सिद्ध—उसको नहीं सिखलाई जायगी । सिवाय तुम्हारे किसी को भी नहीं । वह अपने एक जानपहिचान वाले के साथ घड़ी आध घड़ी पीछे कुछ करामात देखने आ रहा है । उस करामात को देखने के उपरान्त उन दोनों को विश्वास होगा कि मैं वास्तव में रसायनविज्ञ हूं । (*हँसकर*) संसार की मूर्खता को क्या कहूँ ! विज्ञान और गणित के समझने के पहले उनको कुछ चमत्कार चाहिए सो कर दिखलाओ जैसा कुछ दिन पहले राजगृह के भिक्षुओं को दिखलाया था ।

बलभद्र—(*हँसकर*) कठिन ही क्या है ? (*गम्भीर होकर*) पहले स्त्रीवेश में आऊँ या ऋषिवेश में ?

सिद्ध—पहले स्त्रीवेश में। फिर वृद्ध ऋषि के वेश में। दिनमें तो तुम काली दाढ़ी लगाए रहते हो, रातमें वृद्धवेश परख में नहीं आ सकता, इसलिए वृद्ध-वेश में ही आओ। तुम वेदी तैयार करो। वे लोग आने वाले होंगे।

[बलभद्र गड्ढे को पाट देता है। गड्ढा केवल एक ओर खुला रहता है। गड्ढे से गहरी नाली एक भीतरी कमरे को गई है। गड्ढे के खुले हुए भाग पर बलभद्र वेदी का ढाँचा रख देता है। ढांचा चारों ओर पनालीदार है। यह वेदी पौर के एक कोने पर है। वेदी की पनाली में बलभद्र आग भर देता है और हवन की सामग्री सिद्ध के पास रख देता है।]

सिद्ध—ठीक हो गया। तुम जाकर तैयार हो जाओ। 'तपस्या में बड़ा बल है' इसको याद रखना !

बलभद्र—जो आज्ञा। (*बलभद्र जाता है। सिद्ध हवन करने लगता है। माधव और पुलिन आते हैं। उनके आने पर सिद्ध वेदी की पनाली में अधिक हवन सामग्री डालता है जिससे बहुत धुआं होता है और वे लोग वेदी के बीच की खाली जगह को नहीं देख पाते।*)

सिद्ध—बैठिए। थोड़ा सा जप बाकी है। पूरा होने पर आप लोग चमत्कार देखिए।

दोनों—जो आज्ञा। (*दोनों बैठ जाते हैं सिद्ध आँखें मूंदे हुए कुछ बड़बड़ाता है। फिर आग में और हवन सामग्री डालता है।*)

सिद्ध—(*आखें खोलकर*) आप लोग कौनसा चमत्कार देखना चाहते हैं ? (*वे दोनों सोचने लगते हैं। सिद्ध उनको अधिक समय नहीं देना चाहता है। वह पलभर पीछे स्वयं अपना संकल्प देता है*)

सिद्ध—आप लोग अभी दो रूपवती स्त्रियों के पास से आ रहे हैं। उनसे भी बढ़कर सुन्दरता वाली स्त्री देखना आपको अच्छा लगेगा। वह इस वेदी में से निकलेगी। पर डरना नहीं। चुपचाप देखना।

दोनों—बहुत अच्छा सिद्धराज।

[सिद्ध आंख मूंद कर ताली बजाता है। ताली बजाने के बाद बलभद्र अति रूपवती स्त्री के वेश में वेदी में से ऊपर आता है और उछल कर बाहर खड़ा हो जाता है। वह बहुत चमकीली और भड़कीली साड़ी और मणि मुक्ता पहिने है। केशों में दमकने वाले बड़े बड़े मोती गूंथे हैं। पहले वह सिद्ध को नमस्कार करता है फिर मादकता पूर्ण दृष्टि से माधव और पुलिन की ओर देखता हुआ वेग के साथ एक कमरे में चला जाता है। सिद्ध वेदी की पनाली में हवन सामग्री डालता है। धुंआ बढ़ता है। पुलिन आश्चर्य में डूब जाता है। माधव विश्वास और अविश्वास के बीच में पड़ जाता है।]

सिद्ध—ऐसी सुन्दर स्त्री पहले कभी आप लोगों ने देखी? और ऐसी मणि मुक्ताएं?

पुलिन—क्या यह सब सच था महाराज?

सिद्ध—अपनी आंखों का तो भरोसा करते हैं न आप?

पुलिन—जी हां जो कुछ देखा वह अद्भुत था!

सिद्ध—आप क्या कहते हैं माधव?

माधव—ऐसा रूप कभी नहीं देखा। क्या कभी फिर देखने को मिल सकेगा?

सिद्ध—यह तुम्हारी श्रद्धा और मेरे अनुष्ठान पर निर्भर है। परन्तु देवता को आतुरता के साथ बारबार नहीं बुलाया जा सकता। हां, मन्त्र की शक्ति को प्रमाणित करने के लिए एक रूप और दिखलाया जा सकेगा।

माधव—कौन सा सिद्धराज ?

सिद्ध—आप जौन सा चाहें। मेरी समझ में आप आर्य नागार्जुन को देखना चाहेंगे जिन्होंने रसायन शास्त्र को चोटी पर पहुंचा दिया था। जिनकी पुस्तक अब लुप्त हो गई है और जिनके नाम पर स्वर्ण रसायन के प्रयोग किए जाते हैं।

माधव—अवश्य ही मैं उन आचार्य के दर्शन करना चाहूँगा। और, यदि आज्ञा हो तो एक बात उनसे पूछना भी चाहूँगा।

सिद्ध—पहले मुझसे पूछ लो; फिर उनसे पूछना।

माधव—स्वर्ण बनाने की क्रियाओं में रक्तामल का नाम आया है।

सिद्ध—(*हँसकर*) आपने इसको लाल आंवला समझा होगा ?

माधव—लाल आंवले का उपयोग किया......

सिद्ध—और, लाल थूहर के दूध का भी उपयोग किया होगा। थूहर के दूध का और विष्णुकांता रूखड़ी का ताम्बे के ऊपर प्रयोग करने से थोड़ा सा स्वर्ण रङ्ग अवश्य आ जाता है, परन्तु उससे ताम्बा सोना नहीं बनता।

पुलिन—सुनता हूं ब्राह्मी के रस में ताम्बे को गलाने से कुछ हो जाता है ?

सिद्ध—(*हँसकर*) इस प्रयोग से कितना सोना बनाया है ?

पुलिन—मैंने कभी कोई प्रयोग नहीं किया। व्यापार करने से जो थोड़ा बहुत मिल जाता है उसी से जी भर लेता हूं।

सिद्ध—आपके मन में लखपती–करोड़पती बनने की उमङ्ग नहीं है ?

पुलिन—है तो, पर रसायन की क्रियाओं में बहुत रुपया पहले खर्च करना पड़ता है, तब शायद कहीं कुछ हाथ लगता हो, इसलिए लालसा होते हुए भी कुछ दूर बना रहता हूँ।

माधव—मैंने इन क्रियाओं पर बहुत धन बिगाड़ा है। परन्तु अभी तक वैद्यक सम्बन्धी ज्ञान बढ़ने के सिवाय और कुछ नहीं पाया।

सिद्ध—वह क्या कम है?

माधव—परन्तु मैं उससे संतुष्ट नहीं हूं। मैं वैद्य नहीं बनना चाहता हूं।

सिद्ध—स्वर्ण रसायन शास्त्री और करोड़पती बनना चाहते हो तो रक्तामल का अर्थ मैं बतलाए देता हूं, परन्तु प्रयोग उसका यथावत तभी समझ में आवेगा जब काफ़ी तपस्या कर चुकोगे।

माधव—अर्थ क्या है महाराज उसका? अर्थ उसका?

सिद्ध—मनुष्य का रक्त।

माधव—मनुष्य का रक्त!

पुलिन—रक्त! रक्त!! ओफ़!!! मनुष्य का रक्त!!!!

सिद्ध—हां जी। घबरा क्यों गए? बिना किसी का रक्त बहाए या बिना किसी को मूसे हुए कभी कोई लखपती बना है? सभी धन वालों की यही एक कहानी है।

माधव—क्षमा कीजिएगा सिद्धराज, मैंने कभी किसी का रक्त नहीं बहाया और न कभी किसी को मूसा या लूटा खसोटा है।

सिद्ध—आपने ऐसा न किया होगा तो आपके किसी पूर्वज ने किया होगा या थोड़ा थोड़ा अनेक पूर्वजों ने किया होगा और अनजाने ही सही, थोड़ा बहुत आप भी करते रहते होंगे। क्योंकि वेद व्यास की बात ग़लत नहीं हो सकती।

माधव—वेद व्यास की!

पुलिन—बतलाइए महाराज वेद व्यास ने क्या कहा है?

सिद्ध—नाच्छित्वा परमर्माणि, नाकृत्वा कर्म दुष्करम्,
नाहत्वा मत्स्यघातीव, प्राप्नोति महतीं श्रियम्।

दूसरे के मर्म स्थल को बिना छेदे, बिना बुरे काम किए, मछुओं की भांति बिना हजारों जीवों का प्राण लिए, बहुत धन प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

पुलिन—परन्तु हिंसा, जीव-हत्या, तो अपने सारे देश में बन्द चली आती है। लखपती भी बराबर होते चले आते हैं। एक हमारे व्यष्टि—माधव—ही है। यह तो कोई हिंसा नहीं करते।

सिद्ध—आपको क्या मालूम यह क्या करते हैं और क्या नहीं करते? (*वेदी के धुएं को कम होता हुआ देखकर उसमें हवन सामग्री डालकर धुएं को बढ़ाता है*) रक्तामल का जो एक अर्थ है वह मैंने बतला दिया।

माधव—तो क्या आप नर-रक्त से स्वर्ण बनाते हैं?

सिद्ध—बिलकुल नहीं।

माधव—तो फिर रक्तामल का कोई दूसरा अर्थ है?

सिद्ध—यह ऋषि नागार्जुन बतला सकेंगे। मैं जिन क्रियाओं से स्वर्ण बनाता हूँ उनमें हिंसा के भी रक्त का उपयोग नहीं करना पड़ता है। बुलाऊं नागार्जुन को?

माधव—अवश्य।

पुलिन—बड़ी कृपा होगी।

[*सिद्ध वेदी की पनाली में और अधिक सामग्री डालता है। जब खूब धुआं फैल जाता है तब वह ताली बजाता है। ताली बजाने के उपरान्त बलभद्र एक वयोवृद्ध ऋषि के वेश में वेदी के बीच में से ऊपर आजाता है और उछल कर वेदी के बाहर खड़ा होजाता है। धुआं के कारण वह स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ता, परन्तु उसकी*

रूपरेखा पुलिन और माधव की समझ में आजाती है। सिद्ध उसको खड़े होकर नमस्कार करता है। वह वरदहस्त उठाता है। माधव और पुलिन भी हड़बड़ा कर खड़े होजाते हैं और प्रणाम करते हैं। बलभद्र थोड़ा सा मुस्कराता है और वरदहस्त थोड़ा सा उठा देता है।]

सिद्ध—(*बैठकर माधव और पुलिन से*) आप लोग बैठ जायं।

(*माधव और पुलिन बैठ जाते हैं*)

सिद्ध—यही हैं ऋषि नागार्जुन जिन्होंने मनुष्य जाति के लिए स्वर्ण बनाना सहज कर दिया था; परन्तु कुपात्रों ने इनकी बतलाई हुई क्रियाओं का दुरुपयोग किया, इसलिए इन्होंने अपने हाथ से लिखी हुई पोथी को ही नष्ट कर दिया। पूछिए आप लोग एक एक बात इनसे।

माधव—स्वर्ण किस प्रकार बनाया जा सकता है, देव?

पुलिन—रक्तामल का क्या अर्थ है, भगवन्?

बलभद्र—तपस्या में बड़ा बल है।

(*सिद्ध उसको नमस्कार करता है। बलभद्र तुरन्त चला जाता है। उसके जाने पर सिद्ध वेदी की पनाली में हवन सामग्री डालकर धुएं को बढ़ा देता है।*)

पुलिन—ओफ़, अचम्भा है! अचरज है!!

माधव—अवश्य है। परन्तु सिद्धराज, प्रश्न का ठीक उत्तर नहीं मिला।

सिद्ध—(*क्षुब्ध स्वर में*) यह अविश्वास और अश्रद्धा ही तो विद्या के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा है।

पुलिन—मुझको तो कोई अविश्वास नहीं है। मैं सिद्धराज की भक्ति-पूर्वक सेवा करूँगा और अपना सिर देकर भी शिष्य बनूँगा।

माधव—मैं विज्ञान का भक्त हूं और ऋषि चर्वाक के मत की बहुत सी बातों का मानने वाला हूँ। तो भी मेरी श्रद्धा सिद्धराज के ऊपर बहुत बढ़ गई है। यदि मेरे मन में निष्ठा है और सिद्धराज के मन में विद्यादान की अनुकम्पा तो वह मुझको अवश्य विद्या का दान करेंगे, चाहे मैं उनका शिष्य बनूँ या न बनूँ।

सिद्ध—(*हँसकर*) मैंने तो शिष्य बनाने की बात ही नहीं कही। मैं ओलम से कह रहा हूँ कि तपस्या में बड़ा बल है। यही बात ऋषि नागार्जुन ने भी कही है। तपस्या करोगे तो फल अवश्य मिलेगा।

माधव—ऋषि ने रक्तामल का अर्थ नहीं बतलाया।

सिद्ध—आप दोनों ने एक साथ प्रश्न किए। दोनों का उन्होंने एक उत्तर दे दिया।

(*सिद्ध आग पर और हवन सामग्री डालता है*)

माधव—मैं तपस्या करूँगा।

पुलिन—तपस्या से बड़ी भक्ति है। मैं गुरुचरणों की सेवा करूँगा।

सिद्ध—कल्याण हो। अब आप लोग जायं।

(*माधव और पुलिन खड़े हो जाते हैं*)

माधव—अब कब दर्शन होंगे?

सिद्ध—(*कुछ सोचकर*) कल दोपहर मुझको कामिनी के भवन पर जाना है। सन्ध्या को शायद न मिल सकूँ। परसों सन्ध्या के उपरांत आश्रम पर आ जाना। परन्तु अभी जो कुछ बतला दिया है उससे अधिक और क्या कहूँगा?

माधव—(*मुस्कराकर*) यह हम लोगों की उपासना के ऊपर निर्भर है।

पुलिन—हां, हमारी भक्ति के ऊपर।

(माधव वेदी को देखना चाहता है। सिद्ध हवन सामग्री डाल-कर धुएं को बढ़ा देता है। तो भी वेदी के बीच के रीते स्थान को वह कुछ कुछ देख लेता है)

सिद्ध—*(रुखाई के साथ)* अब आप लोग जाइए। ठहरने से हानि हो सकती है।

[पुलिन नमस्कार करके तुरन्त बाहर जाता है। माधव भी नमस्कार करके, सोचता हुआ, धीरे धीरे चला जाता है। उन दोनों के चले जाने पर सिद्ध कुछ देर द्वार पर खड़ा रहता है। फिर किवाड़ बन्द कर लेता है। बलभद्र मुस्कराता हुआ आ जाता है।]

सिद्ध— बलभद्र, तुमने बहुत अच्छा निभाया।

बलभद्र—मुझे लगता था कहीं चूक न जाऊँ।

सिद्ध—तुम बिलकुल नहीं चूके। माधव कुछ कांइयां है। वह वेदी को निरखना चाहता था।

बलभद्र—मैं ओट से देख और सुन रहा था। आगे क्या करना है, गुरुदेव!

सिद्ध—देखो, बिना बहुत सा सोना इकट्ठा किए हुए स्वर्ण-रसायन के प्रयोग आगे नहीं बढ़ाए जा सकते। अभी तक जो सोना मैंने बनाया है उस पर इतनी लागत लग गई है कि सोना तिगुने चौगुने दामों पड़ा। अपनी गांठ में काफ़ी सोना हो जाय तो उसके आसरे से क्रियाओं पर क्रियाएँ की जायं। अवश्य ही थोड़े से खर्च से बहुत सारा सोना बना लिया जा सकेगा। उसी समय तुमको सब क्रिया बतला दी जावेगी और तुम स्वतन्त्रता के साथ अपना जीवन चलाना और मौज करना।

बलभद्र—रक्तामल का जो अर्थ आपने बतलाया, वह?

सिद्ध—वह सब कुछ नहीं है, बलभद्र। मनुष्य के रक्त से कहीं सोना बनता है? परन्तु वह माधव सेंतमेंत ही सब जान लेना चाहता था।

बलभद्र—इसका नाम तो व्याडि है ?

सिद्ध—व्याडि था। जब से वह कामिनी नाम की एक सुन्दर गायिका के मधु पर रीझ गया है तब से इसने अपना नाम माधव रख लिया है।

बलभद्र—आपने जो चमत्कार अभी अभी उसको दिखलाया उसका कुछ फल हुआ ?

सिद्ध—हां कुछ न कुछ हुआ ही। कल जो कुछ करना है उसको आज की बात से सहायता मिलेगी। सुनो कल क्या करना है।

[*सिद्ध बलभद्र के कान में कुछ देर तक खुसफुसाता है। जैसे जैसे बलभद्र की समझ में योजना आती जाती है वैसे वैसे वह प्रसन्न होता जाता है।*]

बलभद्र—बहुत अच्छा। मैं यह सब कर सकूँगा। सफलता पूर्वक करने में मुझको बहुत आनन्द आयगा। बहुत। (*गंभीरता के साथ*) परन्तु राजगृह में उसका कुछ फल नहीं हुआ था।

सिद्ध—राजगृह के मरभुक्खों के पास रक्खा ही क्या था ! वहां तो केवल यश कमाना था। वहां की कमाई यहां फल देगी।

बलभद्र—(*मुस्कराकर*) हां गुरु महाराज, बहुत सोना इकट्ठा करना है। क्या सचमुच उस कामिनी के पास बहुत सोना है ?

सिद्ध—बहुत है। और उसकी एक सखी है; छाया या माया नाम है। उसके पास भी बहुत कुछ है।

बलभद्र—(*दृढ़ता के साथ*) जितना गुरु महाराज ने मुझको आदेश किया है उतने को पूरी तरह निभाने का मैं उद्योग करूँगा। बाकी की आप जानें। आप किसी संकट में न पड़ जायं।

सिद्ध—(*मुस्कराकर*) शंका न करो, बलभद्र। न तुम किसी संकट में पड़ पाओगे और न मैं पड़ सकूँगा। मेरा मन्त्रबल अकारथ नहीं जा सकता।

बलभद्र—हां गुरुदेव, आपका मन्त्रबल। (*मुस्कराता है*)

तीसरा दृश्य

[स्थान—कामिनी के भवन का एक कमरा। उसमें अब भी उसी प्रकार की सजावट है। फूल ताज़े हैं। मंच नहीं है। गलीचे और तकिए फ़र्श पर हैं। एक द्वार से कामिनी और माया आती हैं]

कामिनी—हीरों, मोतियों और स्वर्ण में कोई अनूठापन तो नहीं है, परन्तु एक कुतूहल अवश्य है। जैसे सोने के गहने पहिने वैसे हीरे-मोती के। नहीं पहिनती हूँ तब भी गाने में कम मन नहीं लगता।

माया—पुरुष जब बार बार वस्त्रों और आभूषणों को देखते हैं मुझ को तब उनका मूल्य समझ में आता है।

कामिनी—(मुस्कराकर) पुरुष तो वैसे भी आँख बचाकर या गड़ा कर देखते हैं। गहनों से विशेष क्या हो जाता है?

माया—विशेष क्या हो जाता है सो आप भी जानती होंगी—सब स्त्रियां जानती हैं। हम लोगों को स्वतंत्रता के साथ दिखलाई पड़ जाता है, घर-गृहस्थी में रहने वाली स्त्रियों को आड़-पर्दे की ज़रा बाधा के साथ। परन्तु स्त्री अपने को सजाती इसीलिए है।

कामिनी—मुझको गहनों का कोई मोह नहीं है।

माया—फिर भी आप पहिनती हैं। और जब तानों को सुनते सुनते और नृत्य को देखते देखते माधव की दृष्टि आपके गहनों पर जा फिसलती है, तब आप अवश्य सन्तुष्ट हो जाती हैं।

कामिनी—मुझको नहीं मालूम पड़ता। मैं तो अपने स्वरों में मस्त हो जाती हूं। आप नाचने के समय क्या इस बात को ध्यानपूर्वक लखती रहती हैं कि कौन क्या देख रहा है?

माया—ध्यान के साथ तो नहीं लख पाती, परन्तु अपनी कला की कैसी क्या निरख-परख हो रही है इस बात के लिए तो आंख उठानी ही पड़ती है।

कामिनी—विवाह करोगी, माया ? यदि ऐसा करोगी तो उसमें तुम्हारी कला का विसर्जन हो जायगा।

माया—करूँ या न करूँ, परन्त मेरा विचार है कि कला को उससे प्रेरणा मिलेगी।

कामिनी—मैं ऐसा नहीं समझती। अच्छा स्वास्थ्य ही कला का पोषण करता है। साधारण तौर पर स्त्री को यौवन के कितने दिन मिल पाते हैं ? कुमारावस्था और बुढ़ापे के बीच में उसको बहुत थोड़ा समय मिल पाता है। पुरुष की अन्धी वासनाएँ उसको निकम्मा और कलाहीन कर देती हैं, नहीं तो नारी नर की अपेक्षा संसार में बहुत कुछ अधिक कर सकती है।

माया—कला को लगातार ओज क्या केवल शरीर का स्वास्थ्य देता है ?

कामिनी—बहुत कुछ।

माया—जब तक मन को अनेक प्रकार के बहलावों की उत्तेजना नहीं मिलती तब तक केवल स्वास्थ्य से कला को पूरा चेत नहीं मिल सकता। जो जो लोग ध्यानपूर्वक मेरा नृत्य देखते हैं और गाना सुनते हैं और उसपर अपनी चाह बरसाते हैं वे सब उस उत्तेजना को प्रदान करते हैं। जब यह चाह कुछ दिनों टिकती है तब कला को बाढ़ सी मिलती है।

कामिनी—एक पुरुष के बन्धन में रहकर यह कैसे सम्भव है ? आपकी बात से तो मेरे मत का समर्थन होता है।

माया—जैसे जीवन की एक दिन समाप्ति है उसी तरह कला की भी एक पराकाष्ठा है। कलाकी पुजारिन को उस घड़ी तुरन्त उस बन्धन में पड़ जाना चाहिए और कला द्वारा संचित कोमल भावनाओं का अर्पण अपने पति को कर देना चाहिए। तभी यौवन और बुढ़ापा सार्थक हो सकते हैं।

कामिनी—आपकी नृत्यकला पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है। आप किसके साथ ब्याह करोगी ?

माया—(लज्जा के साथ) कोई निश्चय नहीं किया है। (मुस्कराकर) आपका गायन भी तो सौन्दर्य की सीमा को पहुंच गया है। आप किसके साथ विवाह करेंगी ?

कामिनी—मैं अभी अपनी कला को और अधिक जगाऊँगी, इसलिए विवाह न करने का निश्चय है।

माया—(हँसकर) मैं बतला सकती हूँ आप किसके साथ विवाह करोगी। (*कामिनी इसी ओर से प्रश्न सूचक दृष्टि करती है*) आप उनके साथ बंधन में पड़ोगी जिनको आपने ख्याति से माधव बनाया है।

कामिनी—(*गंभीरता के साथ*) यह आपका भ्रम है। निरा भ्रम। मैं विवाह नहीं करूँगी। (*मुस्कराकर*) पर आप जिसके साथ संबंध करने का निश्चय कर चुकी हैं उसका नाम मैं बतला सकती हूं।

माया—(*लज्जा और गंभीरता के साथ*) किसके साथ ?

कामिनी—पुलिन के साथ। (*हँसकर*) ठीक कहा न मैंने ? (*माया नीचा सिर कर लेती है*) बुरा मान गई सखि, क्या ?

माया—(*सिर उठाकर गंभीरता पूर्वक*) आपको कैसे मालूम ?

कामिनी—हुं ! स्त्री की आंख बहुत पैनी होती है। देखकर भी क्या मैं इतना न समझ पाती ?

माया—(*हँसकर*) और मैं तो स्त्री हूँ ही नहीं ! मैंने देखकर भी कुछ नहीं समझ पाया !!

कामिनी—मैं सच कहती हूं, माया। सन्देह मत करो।

माया—मैं भी झूठ नहीं कहती, कामिनी। जरा भी शङ्का मत करो। हीरों का कण्ठा और मोतियों की करधोनी केवल कला पर कोई भी न्योछावर करने की बात नहीं कह सकता।

कामिनी—मैं किसी का मुंह नहीं पकड़ सकती। और न किसी के मन की दौड़ को रोक ही सकती हूं। (*ज़रा तेज़ होकर*) आपको स्वर्ण का मोह है इसलिए आप जैसी कल्पना करलें।

माया—(*बिना क्षोभ के*) मुझको इस बात के स्वीकार करने में बिलकुल हिचक नहीं कि मैं स्वर्ण से घिन नहीं करती हूं और उसीके मोह में इस समय आई हूँ। सिद्धराज से स्वर्ण बनाने की क्रिया सीखने को जी मचलता है, परन्तु मैं पूछती हूं कि मन के भीतर स्वर्ण, मुक्ता और हीरों के लिए लालच न होते हुए भी आप क्यों एक जटाधारी सिद्ध की शिष्य होने जा रही हैं?

कामिनी—(*अपने को संयत करके*) मैं मानती हूँ माया, मेरे राग और विराग, दोनों चंचल हैं। परन्तु उतने चंचल नहीं है जितना आप उनको समझ रही हैं। उत्सुकता और कुतूहल के कारण ही स्वर्ण और हीरा मोती बनाने की क्रिया सीखना चाहती हूँ। सिद्धराज ने भी कल यह प्रश्न किया था—क्या रसायन सीख लेने पर मेरी कला बची रहेगी? मैंने कह दिया था—मेरी कला मर नहीं सकेगी।

माया—(*सन्तोष के साथ*) मेरे मन में कोई मैल नहीं। आपका राग विराग मेरे ही समान है। (*मुस्कराकर*) माधव के विषय में मेरा अनुमान सच्चा निकलेगा।

(*नेपथ्य से किवाड़ों की सांकल के खटखटाने की आवाज़ आती है।*)

कामिनी—स्यात् सिद्धराज आगए।

माया—वही होंगे। चलिए लिवा लावें।

[*दोनों जाती हैं और सिद्ध को लेकर आती हैं। सिद्ध एक झोली टांगे है और हाथ में डंडा लिए है। उसने अपनी आकृति को सुन्दर बनाने में कसर नहीं लगाई है। कामिनी और माया उसको आदर*

पूर्वक बिठलाती हैं। वह उनको ललचाई हुई आंखों से देखता हुआ टेढ़ी गर्दन करके आंखें मूंद लेता है।]

कामिनी—उतावली में किवाड़े बन्द करना भूल आई हूँ। बन्द कर आऊँ?

माया—मैं बन्द करे आती हूँ।

सिद्ध—नहीं। द्वार खुले रहने दो। लक्ष्मी जी के आने के लिए द्वार खुले ही रहना चाहिए।

दोनों—जो आज्ञा।

सिद्ध—(*आंखें खोलकर*) न जाने मैं आप लोगों पर क्यों यकायक इतना प्रसन्न हो गया! आपका गाना पहले भी सुना है। इनका नाच अवश्य कल ही देखा। अद्भुत था। और आपका गाना तो कल ऐसा लगा कि स्थान छोड़ने को जी नहीं चाहता था। अचम्भों से भरी हुई तानें! मैं जब तक रात को जागता रहा उसी नृत्य और उन्हीं तानों के रस मे डूबता उतराता रहा। (*हँसते हुए*) और, जब सो गया तब स्वप्न तुम लोगों की कलाओं के देखे।

कामिनी—(*हर्ष के साथ*) मैं कृतार्थ हुई।

माया—(*कुछ लज्जा के साथ*) मैं कृतज्ञ हूं।

सिद्ध—मैं स्वर्ण रसायन की पूरी क्रिया बतलाने आया हूं। आज तक मैंने कभी किसी को नहीं बतलाई। किसी को बतलाने की इच्छा तक मन में नहीं हुई। पर तुम लोगों ने तो मुझको पराभूत सा कर दिया—बिलकुल हरा दिया।

कामिनी—(*एक ओर मुँह फेर कर*) जी महाराज!

माया—(*लज्जा के साथ नीचा मुँह करके*) जी महाराज!

सिद्ध—मै सच कहता हूँ। मुझको अपने मनकी बात कहने में संकोच नहीं होता, क्योंकि निद्दंग हूं। तुम लोगों को भी संकोच छोड़ना पड़ेगा।

दोनों—आज्ञा हो।

सिद्ध—पहले क्या सीखना चाह ाना या हीरे मोती बनाना ?

माया—जो महाराज सिखलावें।

कमिनी—पहले हीरों मोतियों का बनाना न सीखें माया ?

माया—जैसी महाराज की इच्छा हो।

सिद्ध—पहले कुछ सिद्धान्त की बातें बतलाऊँगा।

दोनों—बहुत अच्छा।

सिद्ध—ऋषि नागार्जुन ने सीधी भाषा में स्वर्ण-रसायन के प्रयोग लिखे थे। वह सब लेख नष्ट हो गया है। मुझको गुरू कृपा से उनमें से अनेक प्रयोग मालूम हो गए हैं। परन्तु मैंने उनकी भाषा बदल दी है।

कामिनी—आपने कौनसी भाषा रक्खी है ?

सिद्ध—फूलों की बोली।

माया—फूलों की बोली।

कामिनी—फूलों की बोली !! फूलों की बोली कैसी ?

सिद्ध—कल रात मैंने कुछ फूलों के नाम लिए थे न ?

कामिनी—लिए थे। और मैं समझ गई थी कि इनका कोई गूढ़, कोई बहुत छिपा हुआ अर्थ होगा।

सिद्ध—इसमें कोई सन्देह नहीं। नहीं तो भला पाटल, तमाल, अलसी इत्यादि के फूल पत्तों से क्या होता है ?

माया—तो उन फूलों के नाम क्या केवल संकेत थे ?

सिद्ध—जैसे मुझको आवश्यकता पड़े तो माया को माया न कहूँगा। (*सिर पर हाथ फेरकर सोचते हुए*) किसी फूल का नाम रक्खूंगा। क्या नाम रक्खूं माया तुम्हारा ?

माया—(*हँसकर*) चाहे जौनसा।

सिद्ध—हां—मञ्जरी—नहीं, मल्लिका मञ्जरी। और कामिनी का, (*कामिनी पर आंख गड़ाकर*) कामिनी तो वैसे ही एक फूल का नाम है। परन्तु अपने मतलब के लिए कामिनी का नाम कुमुदनी रख लूंगा। (*मुस्कराकर*) अच्छा नाम है न ?

(*दोनों हँसती हैं*)

सिद्ध—हरसिंगार का फूल बहुत छोटा होता है, परन्तु देखने में अत्यन्त सुन्दर और सुहावना। वह प्रेम का बोधक है। स्यात् कामदेव के बाण उसी से बनते हों। मेरी यदि तुम लोग आपस में चर्चा करो तो सिद्ध न कहकर सरसों कह सकती हो। सरसों का फूल अपनी ओर खींचे बिना नहीं रहता है, परन्तु सरसों कड़वी होती है। मेरी बातें कड़वी लगती हैं, लेकिन सरसों का तेल कड़वा होने पर भी रोगनाशक और लाभदायक होता है। मैं वैसा ही हूँ। मैं यदि कहूं कुमुदिनी को हरसिंगार ने सरसों से मिला दिया तो क्या इसमें वास्तविकता न होगी ?

(*कामिनी लजा जाती है और माया मुहँ फेर कर हस देती है।*)

कामिनी—फूलों की बोली में स्वर्ण-रसायन को तो बतलाइए।

सिद्ध—(*अबोध भाव से*) पहले फूलों की बोली का एक अध्याय पूरा हो जाय तब दूसरा आरम्भ करूंगा। माया, मेरा दूसरा नाम सेंम्हर का फूल है। ताड़ समान ऊँचा होता है सेंम्हर और फूल उसके बिलकुल लाल होते हैं—जैसे ऋषि नागार्जुन का रक्तामल। मुझको यदि असली रक्तामल की बात बतलानी होगी तो मैं सेंम्हर की आड़ लूँगा। कहूँगा मल्लिकामञ्जरी को हरसिंगार सेंम्हर की भेंट करेगा।

(*माया लज्जा के मारे लाल होजाती है, परन्तु हँस देती है।*)

माया- परन्तु यदि मल्लिका मञ्जरी हरसिंगार के साथ थोड़ी दूर चलकर कहीं बीच में ही अचक जाय तो ?

सिद्ध—(*अप्रतिहत भाव से*) हरसिंगार कभी नहीं चूकता और न चूकने देता है। क्या कहती हो कामि . . . कुमुदिनी ? तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया ?

कामिनी—संसार में पुष्प तो बहुत अधिक हैं। आपके फूलों की बोली का कोश तो अभी हम लोगों के जानने के लिए बहुत लम्बा पड़ा होगा ?

सिद्ध—हां, परन्तु एक अध्याय तो पूरा करलूं ?

कामिनी—कुमुदिनी और मल्लिका, सब, सरसों और सेंभर के सामने सिर झुकावेंगी।

सिद्ध—(*सन्तुष्ट होकर*) मैं प्रसन्न हुआ। तुम दोनो मेरी बात समझ गईं इसका मुझको हर्ष है। देखो, मैं बाबा हूं। मुझको तो थोड़ासा ही मनोरञ्जन चाहिए। नदी के प्रवाह की तरह कहीं भी नहीं ठहरता हूँ। आज यहां कल वहां। तुमको इतने बड़े शास्त्र-दान के बदले में मुझको कुछ तो देना चाहिए न ?

कामिनी—आप हम लोगों की कला पर कल सन्तुष्ट हुए थे, और उसके पुरस्कार में रसायन की जानकारी देने का वचन दे गए थे।

सिद्ध—साधू-सन्तों को गायन-वादन सुनाना तो तुम्हारा धर्म होना चाहिए। (*कुछ रुखाई के साथ*) उसके पालन करने के बदले में क्या तुमको कुछ मांगना उचित है ?

कामिनी—(*सहमकर*) मैं क्षमा चाहती हूँ। मैं आपको रुष्ट नहीं कर सकती।

सिद्ध—अच्छा, अच्छा कोई बात नहीं। मैंने कल रात पाटल की पत्तियों के रस की बात कही थी। वह वास्तव में पलाश के पत्तों के रस का अर्थ रखता है। तमाल के चूर्ण से मेरा प्रयोजन ताम्बे के चूर्ण से था। ताम्बे के चूर्ण को मल्लिका की आंच यानी अपनी सखी माया की सहायता

से किसी बड़ी आंच में पिघला कर पलाश के पत्तों के रस से मिला दिया जाय और फिर मचकुन्द का संयोग किया जाय तो चोखा सोना बन जायगा।

कामिनी—मचकुन्द का संयोग क्या और कैसा ?

सिद्ध—बस स्वर्ण रसायन में इतनी ही पहेली और है। थोड़ी देर में बतलाता हूँ। परन्तु सोचता हूँ पहले हीरे और मोती बना दूँ। अपना सारा स्वर्ण लाओ।

दोनों—बहुत अच्छा।

(दोनों जाती हैं और थोड़ी देर में अपना सब गहना लेकर आ जाती हैं)

सिद्ध—*(गहनों को देखकर)* तुम्हारे गहनों में कोई हीरे तो नहीं जड़े हैं ?

कामिनी—नहीं सिद्धराज।

माया—नहीं महाराज।

सिद्ध—कोई मोती ?

कामिनी—बहुत थोड़े से।

माया—मेरे पास तो बिलकुल नहीं हैं।

सिद्ध—कुमुदिनी, तुम अपने मोती गिन लो।

कमिनी—*(लज्जा से सहम कर)* गिने हुए हैं। कुल पांच हैं।

(स्त्री वेश में बलभद्र आता है। उसका सौन्दर्य अद्भुत जान पड़ता है। बगल में एक पोटली दाबे है। बलभद्र सिद्ध को नम्रता पूर्वक नमस्कार करता है। सिद्ध कोई उत्तर नहीं देता। बलभद्र आंख गड़ाकर माया को एक क्षण के लिए देखता है।)

सिद्ध—(*बलभद्र को सिर से पैर तक देखकर और आंखें तरेर कर*) तुम कौन हो ? यहां क्यों आईं ?

बलभद्र—(*नीचा सिर किए हुए भयभीत स्वर में*) महाराज का इतना बड़ा नाम है और आपके स्वर्ण रसायन की कीर्ति इतनी फैली हुई है कि मैं सेवा में आने के लिए विवश हो गई। कई दिन से खोज रही थी। आज किसी तरह पता लगा, इसलिए यहां आने की ढिठाई की। मैं अपना सब गहना ले आई हूं। मुझको इसे हीरों और मोतियों में बदलवाना है।

सिद्ध—और मैं तुम्हारे ऊपर अनुग्रह न करूँ तो ? कह दूं यहां से इसी समय निकल जाओ, तो ?

बलभद्र—(*दृढ़ता के साथ*) तो ? मैं प्रण करके चली हूं कि इसी समय आत्मघात कर लूँगी। (*आंख चुराकर माया को देखता है*)

सिद्ध—बड़ी आफ़त है। अपने को कितना छिपाता हूँ तो भी लोग ताड़ लेते हैं ! अच्छा जी, मैंने निश्चिय किया है कि तुम्हारे सोने को हीरा मोती नहीं बनाऊंगा, नहीं बनाऊंगा। जाओ, हटो।

(*बलभद्र अपनी चोली में से छुरी निकालता है और अपनी छाती पर तानता है।*

बलभद्र—मैं यहां से नहीं जाऊंगी, नहीं जाऊंगी और हीरा मोती बनवा कर ही रहूँगी। नहीं तो यह लो......

(*सिद्ध उछल कर उसका हाथ पकड़ लेता है। माया और कामिनी बलभद्र के हाथ से छुरी छीनने का प्रयास करती हैं।*)

बलभद्र—छुरी विष बुझी है। दूर रहो। मैं आत्मघात करूंगी।

सिद्ध—अच्छा, अच्छा, देवी, हम लोगों पर दया करो। छुरी को फेंक दो। मैं तुम्हारे सब गहनों को हीरा मोतियों में बदले देता हूं।

बलभद्र—मैं स्वर्ण-रसायन भी सीखूंगी। बिना सीखे नहीं मानूँगी। आप नहीं बतलायेंगे तो आत्मघात कर डालूंगी। घर से प्रण करके चली हूँ।

सिद्ध—क्या विपद है। अच्छा जी स्वर्ण-रसायन भी बतलाऊँगा। जैसे दो को बतलाया वैसे तीसरी सही। परन्तु मैं इन दोनों देवियों का बँधा हूँ। इस समय इनके घर में हूँ। इनकी अनुमति मिलनी चाहिए।

बलभद्र—*(उन दोनों के हाथ जोड़कर)* मेरी नारी जाति पर दया करो देवियो।

कामिनी—मेरी अनुमति है।

माया—मेरी भी।

सिद्ध—अच्छा, बतलाता हूँ। इस छुरी को फेंको।

बलभद्र—छुरी जहां से निकली थी वहीं वापिस जायगी, और यदि आपने आनाकानी की तो फिर निकल पड़ेगी। मैं ऐसी वैसी नारी नहीं हूँ।

(बलभद्र छुरी को फिर अपने वस्त्रों में छिपा लेता है)

सिद्ध—मुझको तुम्हारी कामना पूरी करनी पड़ेगी। तुम्हारा नाम क्या है?

बलभद्र—मेरा नाम चम्पा है। परन्तु मेरे तीखे स्वभाव और *(मुस्कराकर)* रूप के कारण कोई केतकी और कोई कोई गंवार कन्हरी भी कहते हैं।

सिद्ध—तुम्हारे रूप और स्वभाव की प्रचण्डता में किसी को भी शंका नहीं हो सकती। परन्तु तुम केवल धमकी देकर मुझसे इतना अनमोल काम नहीं करवा सकती। हीरे मोती बनवाओगी, स्वर्ण-रसायन मुझसे सीखोगी और मुझको दोगी कुछ नहीं।

बलभद्र—*(नम्रता के साथ)* क्या देना पड़ेगा, महाराज?

सिद्ध—जो कुछ ये देंगी।

बलभद्र—(*कामिनी से*) आपने क्या देना कहा है?

कामिनी—(*सकपका कर*) अभी तो अभी तो...

बलभद्र—(*माया से*) आपने क्या देना कहा है?

माया—अभी तो हरसिंगार सन्देशा लेकर मल्लिका मञ्जरी के पास गया है।

बलभद्र—(*अचकचाकर सिद्ध से*) यह सब क्या बोली है, महाराज?

सिद्ध—यह फूलों की बोली है। इसका अर्थ है ये दोनों अपनी आत्मा और देह मुझको समर्पित कर देंगी।

(*वे दोनों एक दूसरे को देखकर मुँह फेर लेती हैं*)

बलभद्र—मैं भी अपनी देह और आत्मा आपको अर्पित कर दूँगी। मैं उन स्त्रियों में से हूं जो गहनों के लिए अपना सब कुछ खो देने को तैयार हो सकती हैं, जो गहनों के पीछे अपने प्राण तक दे डालने में आगा-पीछा नहीं सोचतीं।

सिद्ध—तुम्हारा नाम चम्पा, केतकी और कटहरी सब सार्थक है। अच्छा, अब सब सोना बनाने की क्रिया सुनलो। पलाश के पत्तों के रस को पिघले हुए ताम्बे में डाल दो। ऊपर से मचकुन्द के फूलों का रस। मचकुन्द का अर्थ रसायन की भाषा में रक्तामल है। रक्तामल रक्त ही है। किसी मनुष्य का रक्त नहीं, किसी का भी रक्त नहीं। मैंने रसायन बतला दी। अब तुम लोग अलग अलग कोठों में जाकर स्नान करके आओ। तब और काम होगा।

बलभद्र—मेरे लिए जल?

कामिनी—मैं लाती हूँ।

सिद्ध--और देखो, यह सब गहना एक मटके में रखना होगा। एक खाली मटका लाओ। ढकने के लिए भी कुछ लाना। थोड़ा सिन्दूर भी।

कामिनी—बहुत अच्छा।

(कामिनी जाती है)

सिद्ध—(*माया से*) तुमको विश्वास है न मेरे ऊपर ?

माया—(*मुस्कराकर*) हरसिंगार वाली बात का ?

सिद्ध—(*झेंप को दबाता हुआ*) हां उसका भी। पर अभी रसायन वाली बात का।

माया—मुझको विश्वास है। महाराज, हम लोग अपनी कला को, अपनी देह और आत्मा से भी ऊपर मानती हैं। यही हमारा सर्वस्व है।

सिद्ध—और मैं अपनी रसायन को सब संसार के ऊपर मानता हूं।

(कामिनी एक खाली मटका, ढकना और एक जल भरा हुआ घड़ा लाती है।)

सिद्ध—इस चम्पा केतकी कटहरी को यहीं कोई कोठा बतला दो। यह स्नान करले। रीते मटके में सब गहना रखदो और दोनों स्नान करके आजाओ। मुझको सन्ध्या समय कुछ भक्तों से मिलना है और सन्ध्या के पहले बहुतसा काम करना है।

कामिनी—जो आज्ञा।

[बलभद्र, कामिनी और माया अपना अपना गहना सावधानी के साथ मटके में रखदेती हैं। सिद्ध कुछ गुन गुनाता जाता है और अपनी झोली में से चमकती हुई भस्म निकाल कर मटके में डाल देता है। फिर एक शीशी में से लाल रंग का रस मटके में उड़ेल देता है और मटकेको खड़ खड़ाता है। फिर उस मटके के ऊपर. गुन

गुनाते, गुन गुनाते विविध प्रकार की आकृतियां जल्दी जल्दी बना डालता है। इसके उपरान्त मटके पर ढाकन रख देता है। बलभद्र अपनी छोटी सी पोटली और जल भरा घड़ा लेकर पास के कोठे में चला जाता है। कामिनी और माया स्नान के लिए भीतर चली जाती हैं। सिद्ध कुछ गुन गुनाता रहता है।]

सिद्ध—(*अकेला रह जाने पर थोड़े ही समय उपरान्त*) रक्तामल, रक्तामल, स्वर्ण से मोती बना, हीरे बना। समय हो गया, जल्दी बना, जल्दी बना।

[बलभद्र सावधानी के साथ कोठे में से निकलता है। अब वह काली दाढ़ी लगाए है और गेरुए वस्त्र पहिने है। आते ही वह मटके में भरे हुए गहनों को अपने कपड़े में बांधता है। बांध लेने पर मटके को ढक्कन से ढांककर दोनों चल देते हैं। उनके चले जाने के कुछ देर बाद माया और कामिनी स्नान करके आती हैं। वहां किसी को न देखकर कमरे में इधर उधर आँख डालती हैं।]

कामिनी—माया, सिद्ध महाराज कहां गए ?

माया—धीरे से बोलिए ! (*मुस्कराकर, दबी आँख का संकेत करके, धीरे से*) याद है उस केतकी कंटकी से उनकी क्या बातचीत हुई थी ? शायद वे दोनों इस कोठे में हों। पर अपने को क्या ?

कामिनी—(*धीरे से*) मेरा तो कलेजा धसा जाता है माया। न जानूँ किस कुबुद्धि के चक्कर में पड़कर मैं इस झंझट में फसी। हीरा मोती बने या न बने, स्वर्ण-रसायन सीख पाऊँ या न सीख पाऊं, परन्तु मैं अपनी देह को भ्रष्ट तो किसी तरह भी न कर सकूंगी।

माया—(*धीरे से*) मैंने तो उन्हीं की बोली में, फूलों की बोली में, अपना निश्चय पहले ही जता दिया—हरसिंगार मल्लिका मञ्जरी के पास संदेसा लेकर गया है !

[वे दोनों मटके के पास जाती हैं, फिर हट जाती हैं। थोड़ी देर कमरेमें धीरे धीरे टहलती हैं, फिर कान लगाकर आहट लेती हैं। परन्तु कुछ सुनाई नहीं पड़ता है। वे दोनों धीरे धीरे उस कोठे के पास जाती हैं, जिसमें बलभद्र पानी का घड़ा लेकर गया था। बहुत सावधानी के साथ आहट लेती हैं, परन्तु कुछ न सुन पाने के कारण कमरे के दूसरे सिरे पर धीरे से चली जाती हैं।]

कामिनी– (*घबराहट के साथ*) बात क्या है ? (*बरबस मुस्करा कर धीरे से*) यह बाबा कोई विकट वाममार्गी है। (*तुरन्त चिन्तित होकर*) काफ़ी समय हो गया है।

माया—(*सूखे स्वर में*) यही मैं पूछना चाहती थी। पुकार लगावें ?

कामिनी—नहीं, कहीं सिद्ध को क्रोध न आ जाय।

माया—(*धीरे से*) आ जायगा तो क्या होगा ? वह कोई योगी तो हैं नहीं, जिनका शाप लग जाय। अचरज है कोई भी आहट तो नहीं मिल रही है !

कामिनी –पहले खांसती खखारती पौर में चलो, शायद वहां चले गए हों।

माया—चलो। आप आगे हो जाओ।

[आगे आगे कामिनी पीछे पीछे माया खांसती हुई जाती हैं। नेपथ्य में कामिनी चिल्लाती है—'बाहर से साँकल बन्द है !' दोनों घबराई हुई लौट पड़ती हैं। कामिनी उस कोठे के किवाड़ झटका देकर खोलती है जिसमें बलभद्र गया था। वह उसमें से भरा हुआ घड़ा उठा लाती है।]

माया—(*अधीर होकर*) बहिन, हम लोग ठग लिए गए ! हाय मार डाले गए !!

कामिनी—(*उठती हुई साँस को दबाकर और कष्ट-साध्य स्थिरता के साथ*) ज़रा ठहरो। यह भी सिद्ध की कोई परीक्षा न हो। पहले मटके को देखो, तब कुछ कहो।

[*माया आतुरता के साथ मटके का ढक्कन खोलती है। उसमें हाथ डालती है। उसको हिलाती डुलाती है और आवेश से आकर मटके को पटक कर फोड़ डालती है*]

माया—(*रोकर*) हायरे मैं मरी ! दुष्टों ने मुझको लूट लिया !!

(*कामिनी माथा पकड़ कर बैठ जाती है*)

कामिनी—क्रन्दन करना व्यर्थ है, माया। कोटपाल और दण्डपाशिक को सूचना दे दो तो वे पकड़े जा सकते हैं, अभी दूर न गए हों।

(*माया सिसककर चुप हो जाती है*)

माया—(*बिलखकर*) अब क्या करना चाहिए कामिनी ?

कामिनी—(*अधमरे के जैसे स्वर में*) कहा न कि अधिकारियों को सूचना दे देनी चाहिए।

माया—(*कुछ सचेत होकर*) अधिकारियों को नहीं, माधव और को सूचना देनी चाहिए। वे कुछ प्रबन्ध करेंगे।

कामिनी—(*मूर्छा जैसी अवस्था में*) जैसा उचित समझो करो। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। मेरे हाथ पैर काम नहीं दे रहे हैं।

माया—(*रोते कलपते*) मैं ही देखती हूँ।

[*माया भीतर जाकर ऊपर के खंड में पड़ोसियों को पुकारती है। वह रोती है, परन्तु होश में है; कामिनी रोती नहीं है, किन्तु मूर्छित सी है। कभी माथे को दबाती है, कभी पागलों की तरह इधर उधर देखती है। खड़ी होजाती है, परन्तु पैर लड़खड़ा जाते हैं और फिर माथा पकड़कर बैठ जाती है। केवल 'हाय, हाय,' करती है, और कुछ नहीं कहपाती। थोड़ी देर में पड़ोसी बाहर की सांकल खोलकर*

भीतर आते हैं। सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं, परन्तु वास्तव में उनको कोई दुःख नहीं है।]

एक पड़ोसी—इनके खल पने में तुम लोग फस कैसे गईं?

दूसरा पड़ोसी—भाई, ऐसे सोना नहीं बनता।

एक पड़ोसी—पर यह सब हुआ कैसे होगा? साधारण गृहस्थ की स्त्रियां ऐसी मूर्खता करतीं तो कोई बात भी थी, परन्तु ये तो इतनी चतुर, इतनी व्यवहारकुशल.......

पीछे से एक पड़ोसी—और चालाक......

एक पड़ोसी—अरे नहीं, बिचारी कलावन्त हैं। इतनी होशियार होने पर भी ठगी गईं!

दूसरा पड़ोसी—एक नारी यहां आई थी, सुन्दरी, लावण्य में डूबती उतराती, परन्तु लौटते में तो कोई दिखलाई नहीं पड़ा।

एक पड़ोसी—हमने तो नारी-वारी को, किसी को भी नहीं देखा। किसी प्रेत का छल हुआ होगा।

एक पड़ोसी—अरे दिन दहाड़े! कौन जाने? कौन कहे? इन्होंने न मालूम क्यों यह सब होने दिया?

(वे दोनों आतुर हो जाती हैं। प्रतीक्षा में बार बार पौर के द्वार की ओर ताकती हैं।)

दूसरा पड़ोसी—दण्डपाशिक को खबर नहीं दी? क्यों नहीं दी भाई?

(माधव आता है। वह चिन्तित है)

माधव—कामिनी! माया!! आप लोगों का क्या हाल है? दुखी मत होओ। बतलाओ तो यह सब क्या हुआ? कैसे हुआ?

माया—पुलिन नहीं आए?

माधव—मुझको नहीं मिले। आते होंगे।

माया—हूं।

कामिनी—भीतर चलिए, वहीं सब बतलाया जायगा। (*सांस छोड़ती है और माया के कन्धे का सहारा लेकर भीतर जाती है। पीछे पीछे माधव जाता है।*)

एक पड़ोसी—(*फूटे हुए मटके के टुकड़ों को देखकर*) यह देखो, यह देखो, प्रेत का छल अपने पीछे कुछ तो छोड़ गया है।

(*दूसरा पड़ोसी मटके के एक सिन्दूर भिड़े हुए टुकड़े को उठाता है और सिन्दूर को देखकर तुरन्त फेंक देता है।*)

वही पड़ोसी कौन जाने किसका छल है। जब घर के भीतर माया मौजूद है तब बाहर की किसी भी माया ने क्या बिगाड़ पाया होगा?

एक पड़ोसी—छलबल में प्रेत इन दोनों का पासङ्ग भी न बैठेगा।

दूसरा पड़ोसी—कुछ भेद ज़रूर है नहीं तो हम लोगों के सामने ही सब बातें क्यों नहीं कीं? क्यों अकेले में जाकर खुसफुस कर रहे हैं?

(*पुलिन आता है*)

पुलिन ये सब कहां हैं? आप लोग क्या कर रहे हैं? क्या, क्या चला गया है? यह भाड़ा कैसा फूटा हुआ पड़ा है?

एक पड़ोसी—भीतर है—वे लोग भीतर गई हैं। व्याडि भी साथ गए हैं। और कुछ मालूम नहीं।

(*पुलिन भीतर जाता है*)

दूसरा पड़ोसी—यह भी सरसराते हुए भीतर चले गए! इन लोगों को अपनी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। चलो, घर चलें।

एक पड़ोसी—जैसे घर पर तैसे यहां। अभी घर पर काम भी कुछ नहीं है।

वही पड़ोसी— मुझको तो है। क्यों किसी के दालभात में मूसल पटकें? (*जाता है*)

दूसरा पड़ोसी—हम लोग ही क्यों खड़े रहें? कुछ और खो गया तो कौन बखेड़े में उलझे। इन लोगों का धन जैसे आया वैसे गया। बस। (*जाता है*)

(*अन्य पड़ोसी भी इच्छा न होते हुए भी जाते हैं। उनके चले जाने पर पहले माधव सोचता हुआ आता है। फिर उदास मन कामिनी।*)

माधव—अपनी कला का स्मरण करिए। उसके बड़प्पन के सामने धन-सम्पत्ति क्या है?

कामिनी—हूं..ऊँ।

माधव—इसमें सन्देह नहीं कि वह सिद्ध कोई बड़ा उठाईगीरा, लुच्चा और बदमाश था। वह स्त्री भी कोई उसकी साधक थी—ओह! कल रात को वेदी में से जिस स्त्री को सिद्ध ने प्रकट किया था, वही होगी, अवश्य वही होगी। सिद्ध ने मुझको वेदी के पास तक नहीं जाने दिया था।

कामिनी—हूं ऊँ।

माधव—फिर वही स्त्री जटाजूट वाला बाबा बनकर आगई थी।

कामिनी—बाबा! कैसा? कौनसा?

माधव—कल रात की बात है, फिर बतलाऊँगा। आप अपनी उदासी को छोड़ो और अपनी तानों को याद करो। क्या आप अपनी कला को फिर ज्यों का त्यों सजीव नहीं कर सकेंगी?

कामिनी—कला? हूं—ऊं।

माधव—भूल गईं कल क्या कहा था आपने? यदि भिखारिन हो जाऊँ तो भी ....

कामिनी—(*उत्तेजित होकर*) हां तो भी (*तिरस्कार के साथ*) आपसे कुछ न चाहूँगी, और अपनी कला को —हा ! (*माथा पकड़कर बैठ जाती है*)

माधव—(*कन्धे पर हाथ रखकर*) कामिनी व्याकुल मत होओ। मेरा निश्चय सुनो। कल की संध्या नहीं होने पायगी और उतना ही स्वर्ण और उतने ही मोती आपके भवन पर आजायंगे (*कांपते हुए गले से*) मुझसे क्यों नहीं चाहोगी ? (*दृढ़ स्वर से*) तुम्हारे मन में चाह होनी ही क्यों चाहिए ? चाह तो मेरे मन की निधि है।

(*कामिनी के आंसू आजाते हैं*)

कामिनी—आप इतना बड़ा त्याग मत करिए। मैं अपनी कला द्वारा फिर कमा लूँगी।

माधव—(*मुस्कराकर*) और मैं व्यापार या स्वर्ण-रसायन द्वारा इससे दूना अर्जित कर लूंगा। (*उमंग के साथ*) नाहीं मत करना, कामिनी। मेरा जी बहुत दुख जायगा।

कामिनी—(*खड़ी होकर, आंसू बहाते हुए*) मैं न जाने आपसे क्यों कड़वा बोल जाती हूँ ? मेरा संकल्प न जाने क्यों टूट टूट जाता है ?

माधव—आपके आंसू मेरे हृदय के रक्त को झुलसाए दे रहे हैं। मैं सह नहीं सकता।

(*कामिनी आंसू पोंछ डालती है और मुस्कराने का निर्बल यत्न करती है*)

कामिनी—दुष्ट क्या इतना सब गहना यों ही उड़ा ले जायेंगे ? क्या सब यों ही चला जायगा ?

माधव—उसकी चिन्ता मत करो। यदि वे पकड़े जा सके तो ठीक है, नहीं तो, जो गया सो गया। आपकी कला सजीव और अभङ्ग रहनी चाहिए।

कामिनी—वह आपके लिए वैसी ही रहेगी। (*आह दबाकर*) शायद वैसी ही।

माधव—(*हर्ष पूर्वक*) मैं आपने को धन्य समझता हूँ।

(*आगे आगे पुलिन आता है, पीछे पीछे रोती सिसकती माया*)

पुलिन—माधव, आप नगर सेठ हैं। न्याय के डंडे को तुरन्त सचेत करिए। (*कामिनी को कम दुःखी देखकर*) देखो माया, कामिनी का माल तुमसे अधिक मूल्यवान था, परन्तु इनको कोई व्यथा नहीं है। धीरज धरो।

माया—(*सिसककर*) धीरज ! हा, धीरज !! मेरे पास तो कुछ भी नहीं बचा !!!

कामिनी—(*पुलिन से*) बचा तो मेरे पास भी कुछ भी नहीं है, परन्तु माधव ने प्रण......

माया—(*आंसू पोंछकर*) क्या प्रण किया है ?

कामिनी—मैं क्या दुहराऊँ !

माधव—इनकी सारी की सारी कमी को कल संध्या के पहले पूरा कर दूँगा।

माया—(*उत्तेजित होकर*) पुलिन ! पुलिन, मैं क्या करूँ ?

पुलिन—(*सिर नीचा करके बैठे हुए स्वर में*) मैं भी भरसक प्रयत्न करूँगा, अर्थात्—थोड़ा बहुत तो करूँगा ही।

माधव—माया, आपकी भी सारी कमी को मैं पूरा कर दूँगा। पुलिन को कदाचित् आजकल सुभीता नहीं है।

पुलिन—(*संयत क्षोभ के साथ*) नगर सेठ, इतना गर्व अच्छा नहीं। और—और—यह साहस !

माधव—पुलिन मैं तुम्हारे मार्ग का बटोही या बटमार नहीं हू। मै तो कला का पुजारी हूँ।

माया—पुलिन भी कला के पोषक हैं।

कामिनी—उन लोगों का पता लगाने का भी तो उपाय करिए। ये बातें पीछे भी हो सकती हैं।

माधव—देखता हूं। वे दुष्ट अभी दूर नहीं गए होंगे।

पुलिन—सिद्धराज का किया हुआ कुकर्म नहीं होगा यह। उनका सा वेश बनाकर कोई और आया होगा।

माया—वही था, वही था। सब कुछ तो बतला दिया मैंने। वह काम और रस की भी बातें करता था।

माधव—दुष्ट था और लम्पट भी।

पुलिन--कोई जाल होगा। सिद्धराज नहीं हो सकता ऐसा। माधव का भ्रम है। आप लोगों की भूल है।

कामिनी—और वह स्त्री!

माधव—बहुत रूपवाली थी न?

कामिनी—हाँ--आँ।

माधव—सब जाल। वेदी में से वही निकली थी।

कामिनी—वेदी! कैसी वेदी! आप कुछ बतलाना चाहते थे।

माधव—बतलाऊँगा। पहले उन लोगों को ढूंढूं।

पुलिन—सिद्धराज नहीं हो सकते ऐसे।

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान--उज्जैन के बाहर झाड़ी। झाड़ी में होकर मार्ग गया है। कुछ पेड़ बड़े बड़े हैं। सिद्ध और बलभद्र आते हैं। सिद्ध ने चेहरे पर चेचक के दाग़ बना लिए हैं और काली दाढ़ी है, सिर पर जटा है, परन्तु छोटे। बलभद्र सफ़ेद जटा लगाए है और सफ़ेद दाढ़ी। रंग उसने सांवला कर लिया था। दोनों लम्बे लम्बे झांगे पहिने हैं और डण्डे लिए हैं। सिद्ध सोने के गहने पोटली में बांधे है। समय सन्ध्या के पूर्व।]

सिद्ध—(*लौट लौटकर पीछे देखता हुआ*) अब तो कोई पीछे नहीं आ रहा है। यहां से सीधे दक्षिण की ओर काञ्ची चलना चाहिए। वहां के लोग बड़ी श्रद्धा वाले हैं।

बलभद्र—परन्तु, गुरुदेव, इतनी बड़ी पोटली लेकर आपको अकेले लेकर नहीं चलना चाहिए। देखने वाले सन्देह कर सकते हैं। आप कहीं पकड़ लिए गए तो सब एक साथ स्वाहा हो जायगा। आधा मैं बांधे लेता हूँ। हम दोनों बचे रहे तो सब बच जायगा और एक पकड़ लिया गया तो आधा फिर भी रक्षित रहेगा।

सिद्ध—और सन्देह में दोनों पकड़ लिए गए तो माल के साथ साथ हम दोनों गए और स्वर्ण-रसायन शास्त्र भी गया। तुम निरे बुद्धू हो।

बलभद्र—मैं बुद्धू हूं गुरु, महाराज ! मैंने कितनी सफ़ाई और सुन्दरता के साथ गहने खिसकाए !! कैसा अद्भुत नाटक किया !!!

सिद्ध—बिना मेरी योजना के सब मिट्टी में मिल जाता।

बलभद्र—(*थककर*) मेरे पैर आगे नहीं बढ़ते। आज बहुत थक गया हूं। चलते नहीं बनता।

सिद्ध—(*क्षोभ को दबाकर, फुसलाते हुए*) तुम कितने आज्ञाकारी हो ! और कितने सुन्दर !! यदि तुम स्त्री होते तो शायद मैं सन्यास छोड़ कर तुम्हारे साथ विवाह कर लेता !!! तुम परम सुन्दर हो और अत्यन्त बुद्धिमान। तुम वकुल हो, बेला के फल हो।

बलभद्र—(*अपने ऊपर उसकी बात का कुछ प्रभाव पड़ता हुआ व्यक्त करके*) आप विवाह कर लेते !

सिद्ध—मैं तुमको वैसे भी बहुत चाहता हूँ, इतना कि जितना संसार भर में किसी भी स्त्री पुरुष को नहीं चाहता। अब आगे बढ़ो।

बलभद्र—आपने इस तरह की बातें उन दोनों स्त्रियों, कामिनी और माया, से भी कही थीं ?

सिद्ध—(*आँखें तरेर कर*) वह सब स्वांग था। मैं कामासक्त नहीं था। मैं उनके ऊपर मर नहीं रहा था। उनको काबू में करना था। अब चलो आगे। कोई आजायगा तो सर्वनाश हो जायगा।

बलभद्र—इसीलिए तो निवेदन किया कि आधे अलङ्कार मुझको दे दीजिए।

सिद्ध—(*क्षोभ के साथ*) उनका क्या करोगे ?

बलभद्र—(*दृढ़ता के साथ*) पहले ही बतला दिया, महाराज।

सिद्ध—क्या हिस्सा बाँट कराना चाहते हो ?

बलभद्र—नहीं, ऐसा तो नहीं है: पर मान लीजिए कि ऐसा ही है तो भी कोई हानि नहीं।

सिद्ध—जानते हो, यह सब द्रव्य स्वर्ण-रसायन के प्रयोगों पर लगाया जाना है।

बलभद्र—उसी के लिए आधे को अपने पास रखना चाहता हूँ।

सिद्ध—तो क्या तुमको स्वर्ण-रसायन नहीं सीखनी है ? करोड़ों का स्वर्ण नहीं बनाना है ? जिसके लिए मेरे शिष्य हुए, जिसके लिए कुछ तपस्या भी की, कुछ थोड़ा सीख भी गए हो, उसको क्या अधूरा छोड़ना चाहते हो ? ऐं !!!

बलभद्र—स्वर्ण-रसायन का कुछ सिद्धान्त तो जान ही गया हूँ। आज ही उन दोनों वेश्याओं को आपने बतलाया था।

सिद्ध—वे वेश्याएँ नहीं हैं, मूर्ख। केवल गायिकाएँ हैं।

बलभद्र—(*शान्ति के साथ*) कुछ भी हों—पाटल के पत्तों का रस पिघले हुए तमाल-चूर्ण में डाला जाय और मचकुन्द के फूलों का रस ऊपर से—फूलों की भाषा में यही तो रसायन का सूत्र है।

सिद्ध—क्यों बहकता है ? क्यों सत्यानास की ओर जारहा है ? इसके सिवाय एक तेल भी रसायन में पड़ता है। वह किसी को नहीं मालूम मेरे सिवाय।

बलभद्र—(*बिना सकपकाए हुए*) आपकी कृपा से वह भी मालूम हो जायगा किसी दिन।

सिद्ध—तब फिर चल यहां से। बतबढ़ाव मत कर। अभी संसार में बहुत कुछ करने को पड़ा है।

बलभद्र—नाक नक्की गले हमेल ! मैं तो इतना करके, फिर और कुछ करने की सोचूंगा।

सिद्ध—(*क्रुद्ध होकर*) यानी तूने निश्चय कर लिया है कि बिना बाँट-बखरा किए यहां से एक डग भी आगे न बढ़ेगा। (*इधर उधर देख कर*) तू अभी मेरी गहराई को नहीं जानता है। मेरे बल, विक्रम, पुरुषार्थ और मन्त्रशक्ति को !

बलभद्र—(*ज़रा पीछे हटकर*) इतने दिनों में बहुत सीख लिया। जो कुछ कसर रह गई है उसको पीछे सीख लूँगा। मुझको कोई जल्दी नहीं है।

सिद्ध—गधे, तेरी अक़ल क्या घास चरने चली गई है ? पकड़ा जायगा तो शूली पावेगा, शूली।

बलभद्र—मेरी अक़ल तो खोपड़ी में उसी ठिकाने है, जहां थी। आप सोचिए, मेरे ऊपर इतना स्नेह करते करते आपको स्वर्ण के मोह में क्या हो गया है ? और शूली क्या अकेला मैं ही पाऊँगा ?

सिद्ध—अच्छा जा, जहां तेरा मन चाहे। मैं तुझको अब अपने सङ्ग न लगाऊँगा। (*बढ़ता है*)

बलभद्र—(*मार्ग रोककर*) मैं आपसे अलग भी नहीं होना चाहता हूँ। इतना बोझ तो अकेले नहीं ले जाने दूँगा आपको।

सिद्ध—(*लाठी उबार कर*) हट मार्ग में से दुष्ट, बुद्धि-भ्रष्ट।

बलभद्र—(*अपनी लाठी संभालकर*) गुरु महाराज, मैं इसका भी प्रतीकार जानता हूं। और वह विष-बुझी छुरी अभी मेरे पास है।

सिद्ध—(*सकपका कर, पीछे हटता हुआ*) तो मारले अपने को, और मरजा, गुरुघाती ! तुझको नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा।

बलभद्र—(*बिना हिचकिचाहट के*) नरक और स्वर्ग की बात आप पहले भी कई बार बतला चुके हैं कि कहीं कुछ नहीं है। (*पैंतरा बदल कर और पीछे हटकर, छाती की ओर संकेत करके*) इस छुरी को लुहार ने मेरी छाती में धसने के लिए नहीं बनाया था, और न अपने मारने को मैंने इसे विष में बुझाया है।

सिद्ध—(*अत्यन्त आवेश में काँपते हुए और भर्राए हुए गले से*) मैंने एक सुन्दर सांप को पाला ! सांप की जो गति होती है वही तेरी होनी चाहिए।

[सिद्ध उछल कर बलभद्र पर वार करता है। बलभद्र थोड़ी देर तक अपने को कुशलता के साथ बचाता है, परन्तु जैसे ही अपने को बचाते बचाते वह एक हाथ में लाठी लेकर दूसरे से झांगे के नीचे छिपी हुई छुरी निकालने का प्रयत्न करता है, वैसे ही सिद्ध का वार उसके सिर पर पड़ता है। लाठी उसके हाथ से छूट जाती है और वह गिर पड़ता है। दूसरे हाथ की मुट्ठी में फँसी हुई छुरी निकल पड़ती है। सिद्ध उस छुरी को बलभद्र के शिथिल हाथ से छीन कर झाड़ी में फेंक देता है। अलग पड़ी लाठी को भी। बलभद्र छटपटाता है। उस छटपटाहट में उसका हाथ दाढ़ी पर जाता है और वह आधी खिच जाती है। सिद्ध उसकी नाड़ी देखता है। उसी समय नेपथ्य में कुछ लोगों के आने का शब्द होता है। सिद्ध घबरा कर इधर उधर देखता है।]

सिद्ध—कथा-कहानी बखानने के लिए अब यह नहीं बचेगा। अपने किए का पाया मूर्ख ने।

(सिद्ध जल्दी जल्दी जाता है)

(बलभद्र कराहता है)

(कुछ उज्जैन निवासी आजाते हैं। उनमें पुलिन भी है)

कुछ लोग—(*बलभद्र की कराह को सुनकर, उसके पास आकर*) अरे यह क्या है ?

पुलिन—(*निरीक्षण के बाद*) कोई साधू है। ओफ़ ! इसके सिर से कितना रक्त बह रहा है !! किसी दुष्ट ने इसको बुरी तरह मारा है !!!

एक नगर निवासी—वे ही लुटेरे होंगे। पहले उनको ढूंढो। यहीं कहीं होंगे।

पुलिन—कुछ उनको ढूंढें, हम लोग, कुछ इस बिचारे घायल बुड्ढे को दवादारू के लिए ले चलें।

एक नगर निवासी—हां ठीक है। हम लोग उन उचक्कों की खोज करते हैं। आप इसको उठा ले जाइए। अभी शायद मरा नहीं है।

पुलिन—(*नाड़ी देखकर*) अभी नहीं मरा है। परन्तु......

बलभद्र—(*मुँह खोलकर, धीरे से*) पा...नी...।

पुलिन—इसको यहां से शीघ्र ले चलें। यह प्यासा है। ओफ़! कितना रक्त बह गया है!!

[*पुलिन और कुछ नगर निवासी बलभद्र को उठा ले जाते हैं। बाक़ी नगर निवासी दूसरी दिशा में चले जाते हैं और ढूंढ़-खोज करते हैं।*]

दूसरा दृश्य

[*स्थान—उज्जैन में माया के भवन का एक कमरा। कमरा सजा हुआ है। पलंग पर बलभद्र को लिटा दिया गया है। घाव के धोने और मरहम पट्टी में सिर के बनावटी बाल निकल गए हैं और चेहरे पर की बाक़ी आधी दाढ़ी भी चली गई है। चेहरे के कुछ भाग का गोरा रंग भी निकल आया है। कुछ सांवला बना हुआ है। अभी उसको चेत नहीं आया है परन्तु आरहा है। कमरे में माया, कामिनी और पुलिन हैं। समय—सन्ध्या के उपरान्त।*]

पुलिन—इसको चेत आने में अधिक विलम्ब नहीं है। सचेत होने पर सारे रहस्य का पता लगेगा।

कामिनी—बहुत विलक्षण है। गोरा सलोना बालक है। बुड्ढा साधू क्यों बना कुछ समझ में नहीं आता। कोई षड्यन्त्र है।

माया—यदि उस सिद्ध का सहकारी होता तो इस प्रकार मारा न जाता। कामिनी, तुम्हारा अनुमान ग़लत निकलेगा।

पुलिन—अवश्य। मैं तो उस काम को ही सिद्ध का किया हुआ नहीं मानता। सिद्ध का वेश रखकर कोई और आया होगा।

कामिनी—सीधी सी बात आपकी समझ में न जाने क्यों नहीं आरही है। जिन फूलों के नाम सिद्ध ने रात को लिए थे और जो प्रसङ्ग उसने छेड़ा था, आज दोपहर को बिलकुल उसी के संदर्भ में उसने सब बातें कीं। आप क्यों मानने से इनकार कर रहे हैं?

पुलिन—परन्तु कल रात को सिद्ध ने जो करामातें दिखलाई थीं उनको कोई साधारण चोर-उठाईगीरा नहीं कर सकता था।

कामिनी—मैंने भी सब सुन लिया है। इन्द्रजाल मात्र रहा होगा। माधव ने सब कुछ सतर्क होकर देखा था। वह उसको इन्द्रजाल ही मानते हैं।

पुलिन—मैं अपनी आँखों से देखा कहता हूं कामिनी, पराई आंखों से देखने का मुझको अभ्यास नहीं है।

माया—(*ज़रा कुढ़कर*) अपनी आंखों से देखते होते तो क्या न था।

कामिनी—यदि दोपहर वाला ठग वही सिद्ध नहीं था, तो सिद्ध कहां चला गया?

माया—हां, वह कहां चला गया? क्यों? क्यों?

[बलभद्र को चेत आता है। वह आखें खोलता है। माया और कामिनी उसको अधिक निकट आकर देखती हैं। पुलिन ज़रा दूर खड़ा रहता है, परन्तु बारीकी के साथ देखने की चेष्टा करता है। वह बलभद्र की आकृति से गई रात वेदीमें से निकले हुए 'नागार्जुन' की तुलना करता है और थोड़ा सा सादृश्य पाकर सहमता है, परन्तु हठपूर्वक स्पष्ट को अस्पष्ट निर्धारित करने की चेष्टा करता है]

बलभद्र—मा...मा...

माया—(*दया के साथ*) अपनी मां को पुकार रहा है बिचारा। पानी पियोगे ?

पुलिन—इसको पानी नहीं, थोड़ा गरम दूध पिलाना चाहिए।

कमिनी—मैं लाती हूँ दूध। (*कामिनी जाती है*)

बलभद्र—माया...माया।

माया—मेरा नाम ले रहा है यह लड़का !

पुलिन—आपका नाम ! क्या इसको आपने पहले कभी देखा है ?

माया—(*सोचती हुई*) स्मरण नहीं आरहा है।

बलभद्र—(*आँखें खोलकर, परन्तु रीती दृष्टि से*) माया। म...द...भरी मा...या !

पुलिन—मदभरी माया ! अच्छा !! और आप इसको पहले से नहीं जानतीं !!!

माया—कह तो दिया कि नहीं जानती। आप क्यों सन्देह कर रहे हैं ?

पुलिन—हां . नहीं; मैं सन्देह करने वाला कौन होता हूँ ? (*वह ज़रा पीछे हट जाता है*)

बलभद्र—(*माया पर आंख गड़ाकर*) माया ! हां माया !! परमसुन्दरी माया !!! (*सिर उठाने की चेष्टा करता है, परन्तु पीड़ा के मारे रह जाता है और कराह उठता है। माया पलङ्ग पर उसके पास बेठ जाती है और सिर पर हाथ फेरती है। बलभद्र आँख मींच लेता है।*)

माया—अब जी कैसा है ? क्या तुम मुझको जानते हो, युवक ?

बलभद्र—(*आँख खोलकर, मूदते हुए*) मैं कहां हूं ?

पुलिन— (*ज़रा पास आकर*) कलावन्त माया के भवन पर जिनका नाम तुमने अभी लिया था।

माया—ज़रा धीरे बोलिए।

पुलिन—हां, मेरा स्वर कर्कश है ! ..बहुत कर्कश !!

माया—और हृदय भी।

पुलिन—कबसे ? कबसे माया ? मेरे साथ अत्याचार मत करो, माया।

माया—(*बलभद्र के पास से हटकर और पुलिन के पास जाकर*) अत्याचार आप कर रहे हैं।

पुलिन—(*मन की जलन को दबा न पाने के कारण*) मैं व्याडि के बराबर धनाढ्य न होते हुए भी हृदय के विषय में अधिक सम्पन्न हूँ।

बलभद्र—(*धीरे से*) मा...या।

माया—(*उपेक्षा के साथ*) व्याडि नहीं माधव। वह सचमुच माधव हैं। और, और...

पुलिन—कह डालो माया, रुक क्यों गई ?

बलभद्र—पा....नी।

माया—(*पुलिन से कहती हुई*) और, आपके मानो...नहीं; आपका हृदय छोटा है। (*बलभद्र के पास जाकर*) दूध पियो, पानी नहीं। दूध से बल मिलेगा।

बलभद्र—(*आँखें खोलकर*) माया ही हो न ? मैं कहां हूँ ? दूध कहां है ? यह सब माया है क्या ? मैं क्या मर गया हूँ ? यह क्या स्वर्ग है ? स्वर्ग ! अरे नहीं। (*आंखें मूद लेता है*)

माया—(*मुँह पर हाथ फेरकर*) घबराओ मत युवक। मैं माया हूं। यह भवन माया का है। पर यह सब माया नहीं है। सच्चा है। क्या तुम मुझको पहिचानते हो युवक ?

बलभद्र—हां। (*आँखें खोलकर*) हां। पहिचान लिया। दूध कहां है ?

पुलिन—आप भी तो इसको पहले से जानती होंगी !

माया—(*मुँह फेरकर और ज़रा सिहिरकर*) जानती होऊं या न जानती होऊं, आप ज़रा शान्त रहिए।

पुलिन—मैं जाता हूँ। इस समय बुरा लग रहा हूं।

(*परन्तु वह जाता नहीं है। माया बलभद्र के पास चुप बैठी रहती है। पुलिन कमरे में टहलता है। कामिनी दूध लेकर आती है।*)

माया—वह देखो, दूध आ गया।

कामिनी—क्या यह सचेत हो गए ?

(*बलभद्र कामिनी को पहिचानने का प्रयास करता है, उसकी ओर देखता है*)

कामिनी—ऐसा लगता है जैसा इसको कभी पहिले देखा हो, परन्तु नहीं देखा होगा। असम्भव है।

पुलिन—माया ने देखा होगा। इन्हें वह पहिचानता है।

कामिनी—क्यों माया ?

माया—कह नहीं सकती। कदाचित् होगा। दूध पिलादो। जब यह स्वस्थ हो जायगा तब अधिक बातचीत हो सकेगी।

(*वे दोनों बलभद्र के उपचार में लग जाती हैं। जब दूध पिला चुकती हैं तब उत्सुकता के साथ उसको देखती हैं। पुलिन टहलता रहता है। फिर यकायक रुक जाता है।*)

पुलिन—आज विचित्र घटनाओं का दिन है। मैं ठगों को ढूंढ़ने गया और मिल गया मुझको यह ! व्याडि–माधव–ने अपना पूरा टांडा

बेचकर सोना और मोती मोल ले लिए और ठगों को ढूंढ़ने के लिए उँगली तक नहीं हिलाई !! इतनी सम्पति होते हुए भी और नगर सेठ कहलाते हुए भी माधव ने एक हुण्डी नहीं सकार पाई !!! अब देखना है दिवालिएपन के ऊपर नगर सेठी कैसी ऊबती है !!!!

(वे दोनों यकायक खड़ी हो जाती हैं। कामिनी उसके निकट आती है। वह बहुत चिन्तित हो गई है।)

कामिनी—आप क्या कह रहे हैं ! टांडा बेचकर सोना और मोती लिए थे ! हुण्डी नहीं सकार पाई !!

माया—पुलिन, आपको उन उदार सज्जन के लिए उनकी पीठ पीछे ऐसा नहीं कहना चाहिए था।

पुलिन—(*मन ही मन प्रसन्न होकर*) मैंने झूठ नहीं कहा। वह जब आयंगे तब स्वयं अपनी बेबसी प्रकट करेंगे। मै डींग नहीं मारता, और कभी कभी खरी बात कह देता हूं, इसलिए खटकता हूं, परन्तु आड़े टेढ़े समय पर मैं पहिचान में आऊंगा।

बलभद्र—(*धीरे से*) माया। थोड़ा पानी।

(माया उसको पानी पिलाती है)

पुलिन—मेरी बातों में इस समय कोई सार नहीं दिखलाई पड़ता। अनी के समय पर आऊंगा।

(गमनोद्यत)

कामिनी—(*घबराकर*) आपने माधव के विषय में जो कुछ कहा है, समझ में नहीं आया। ज़रा ठहरिए।

पुलिन—(*माया को अपनी ओर आकृष्ट करने में असमर्थ देखकर*) अभी तो जाता हूं। आप लोगों को मेरी बात सुनने का अवकाश नहीं है।

(पुलिन जाता है)

माया—अरे आप इनको क्यों मना रही हैं, बहिन ! जितनी इनके भीतर ईर्षा है उसकी यदि आधी भी कोमलता होती तो बहुत कुछ सह लिया जाता । परन्तु हमारी कला किसी के हाथ बिकी थोड़ी ही है ।

बलभद्र—यह भवन कामिनी का नहीं है ?

माया—तुम कामिनी को चीन्हते हो युवक ?

बलभद्र—कदाचित् चीन्ह सकूं ? कहां हैं वह ?

माया—मुझको चीन्हते हो और कामिनी को नहीं ?

बलभद्र—हां । यह भवन किसका है ?

माया—मेरा है । और यह कामिनी है ।

(*कामिनी को देखकर आखें बन्द कर लेता है*) मैं यहां कैसे आया !

माया—कुछ नगर-निवासियों को तुम बीहड़ में घायल और अचेत पड़े मिले । वे तुमको यहां पहुंचा गए ।

बलभद्र—यहां क्यों ?

माया—क्यों कि पुलिन उनके साथ थे और पुलिन ने सोचा कि हम लोग तुम्हारी सेवा सुश्रूषा अधिक अच्छी तरह कर सकेंगी इसलिए वह यहां छोड़ गए । तुम कौन हो ? तुमको किसने मारा ? तुम बूढ़े सन्यासी का वेश क्यों बनाए हुए थे ?

बलभद्र—(*कराहकर*) मेरे सिर में बहुत पीड़ा हो रही है । स्वस्थ होने पर बतलाऊंगा । (*उसके आँसू आ जाते हैं*) ओफ़ !

[*इधर उधर देखता है । उसी समय माधव एक पोटली मे स्वर्ण और मोती लिए हुए आता है । बलभद्र उसको पहिचानने के लिए टकटकी बाँधकर देखता है ।*]

माधव—(*साधारण स्वर में*) क्या यही व्यक्ति घायल हुआ है ?

माया—हां इसी को पुलिन उठवा कर ले आए हैं। सिर की हड्डी टूटने से बच गई। अब अचेत हो गया है।

(माधव बलभद्र को निकट आकर देखता है, परन्तु उसका मन पहिचानने से इनकार करता है।)

माधव—आतुर होने की कोई बात नहीं है। *(पोटली नीचे रखता है)*

कामिनी—*(मुस्कराहट के साथ)* इसमें क्या है?

माधव—तुम्हारी और माया की कला की न्योछावर।

(माधव पोटली में से एक बड़ा स्वर्ण खंड कामिनी को देता है और एक कुछ छोटा माया को। पोटली में सात मोती हैं। उनको वह अपने हाथ में ले लेता है।)

कामिनी—*(भरे गले से और डबडबाए हुए नेत्रों से)* आपने बहुत बड़ा त्याग किया।

माया—*(आँखों से आँसू टपकाते हुए)* आप महान हैं। मैं तो किसी योग्य नहीं।

(दोनों का ध्यान माधव की मुट्ठी की ओर अनायास जाता है।)

माधव—*(पांच मोती कामिनी को देते हुए)* यह तो आपकी हानि की पूर्ति है। आगे, हीरे-मोती देने के प्रयास में लगूंगा। *(दो मोती माया को देते हुए)* आशा है आपके नृत्य को ऐसा चमत्कार मिलेगा कि देवता भी देखने के लिए तरस उठें।

(माया के हाथ में मोती पहुंचे देखते ही कामिनी को माधव की आर्थिक परिस्थिति का स्मरण हो आता है)

कामिनी—सुनती हूँ पूरा टांडे का टांडा अलग करके यह स्वर्ण और मोती आप ले आए हैं...

माधव—किसने कहा?

कामिनी—पुलिन कह गए हैं। नगर भर को मालूम होगया होगा। और, सुनती हूँ, कोई हुण्डी भी सकारने को पड़ी है?

माया—ओफ़!

माधव—आप लोग चिन्तित न हों। सिद्ध ने स्वर्ण बनाने की जो क्रिया आप लोगों को बतलाई थी वह लगभग ठीक है। मैं अब उसके अनुसन्धान के पीछे पड़ूंगा। सहज ही ढेरों सोना बन जायगा। कोई कमी नहीं रहेगी।

कामिनी—सिद्धराज ने हम लोगों को जैसी बतलाई थी वैसी की वैसी आपको सुनादी थी परंतु मुझको तो उसमें कोई सार नहीं दिखलाई पड़ता है।

बलभद्र—पानी।

माया—(*पानी पिलाते हुए*) लो मेरे पुतले।

कामिनी—मोती तो बहुत मंहगे मिले होंगे?

माधव—हां, कुछ मंहगे तो अवश्य मिले हैं। मिले कठिनाई से।

माया—(*बलभद्र को पानी पिलाकर*) मेरे गहनों में मोती नहीं थे। फिर भी आपने दो मुझको दे दिए!

कामिनी—हां, मोती तो माया के गहनों में न थे।

माया—(*ज़रा अनमनेपन से*) मैं इनको लौटा सकती हूँ।

माधव—नहीं, वे लौटाने के लिए नहीं दिए गए हैं। (*मुस्कराकर*) इनको पहिनकर नाचते हुए जब देखूंगा तब उनका पूरा मूल्य पाजाऊंगा।

माया—(*मुस्कराकर*) आप सचमुच बहुत बड़े हैं।

माधव—नृत्य और गान का सङ्ग है। जब गान अकेला ही द्रुतलय में चलता है तब वह नृत्य का मानो अनुकरण करता है, मानो बिना घुँघरू के वह नृत्य बन जाता है; तानें उस समय घुँघरू के गुरियों की स्वरूपता सी ले लेती हैं।

कामिनी—(*उठते हुए तिरस्कार को दबाती हुई*) गायन नृत्य हो जाता है! (*मुस्कराकर*) कहां कण्ठ, कहां पैर !!

माया—(*मुस्कराकर*) संभव है आपका कहना ठीक हो। परंतु अपनी अपनी जगह दोनों कलाएं बड़ी हैं। कोई किसी से कम नहीं। (*हँसकर*) कुछ अंशों में नृत्य कला गायन कला से अधिक पेचीदी और कठिन है। (*गम्भीर होकर*) नृत्य में अभिनय;—हाव भाव का प्रदर्शन,—और आ मिलता है, बहिन।

(*माधव बलभद्र के बिलकुल निकट जाता है और उसका बारीकी के साथ निरीक्षण करता है। बलभद्र अधसोया सा है। दूध पीने से और संगीत के अरोचक विनाद के कारण उसको नींद आ रही है*)

बलभद्र—(*उनींदी अवस्था में*) रक्तामल। रक्तामल गुरु महाराज।

(*माधव पीछे हट जाता है। उसको कुछ कुछ विश्वास होता है कि बलभद्र को पहिचान लिया।*)

माधव—(*माया और कामिनी को, संकेत से, ज़रा दूर ले जाकर*) जब यह इस कमरे में आया तब इसके सिर पर सफेद बाल और सफेद दाढ़ी थी ?

माया—जी हां। बिचारे के सिर से रक्त बह रहा था।

कामिनी—सिर के बनावटी सफेद बाल और चेहरे की अधनुची सफेद दाढ़ी लोहू में सनी हुई थी। घाव को धोने और मरहम पट्टी करने में सिर के बाल और दाढ़ी बह गई। रङ्ग भी कहीं कहीं गोरा निकल आया। छद्म वेश में है।

माधव—मुझको विश्वास होता आ रहा है कि सिद्ध ने रात में अपनी वेदी के जाल में से इसी युवक को 'नागार्जुन' बना कर खड़ा कर दिया था। मुझको सन्देह है यही युवक स्त्री के वेश में सिद्ध के पीछे पीछे

आपके यहां आया और आप लोगों को ठगने में इसने सिद्ध की साधकता की।

कामिनी—रात में आपके साथ पुलिन भी तो थे। उनको तो इस प्रकार का कोई भी सन्देह नहीं है।

माधव—मेरी आंखों ने धोखा नहीं खाया।

माया—मैं पुलिन की बात को नहीं मानती। परन्तु इस प्रसङ्ग में पुलिन की बात सच हो सकती है, अर्थात् यह असम्भव है कि यह युवक सिद्ध का सहकारी रहा हो। रात को जो कुछ भी हुआ हो भगवान जाने।

माधव—जब यह स्वस्थ हो जाय तब क्या आप लोग इसको किसी प्रकार स्त्री का वेश धारण करने के लिए राज़ी कर सकेंगी?

माया—(*लजाकर, परन्तु प्रसन्नता के साथ*) कठिन तो नहीं जान पड़ता। सोचती हू स्त्रीरूप में खुलेगा भी बहुत यह युवक।

माधव—यदि यह संगीत कला जानता है तो कामिनी के गायन और माया के नृत्य को महत्व पाने में बड़ी सहायता मिलेगी। और उसके रूप के विषय में तो कहना ही क्या है। इतना आकर्षण था कि उफ़! उसका जैसा रूप तो देखा ही नहीं कभी।

कामिनी—(*तिरस्कार के साथ, परन्तु मुस्कराते हुए*) पुरुषों का क्या, उनके लिए सभी फूल एक से एक बढ़कर हो जाते हैं, परन्तु सुगंधि उनकी समझ में किसी की भी नहीं आती होगी। क्यों माया?

माया—नहीं कामिनी, माधव को हर बात की परख है।

कामिनी—हूँ—ऊं। (*मोतियों का स्मरण करके*) मोती कितने कितने के हैं? (*उसी समय बिना सकारी हुई हुंडी की याद करके*) वह हुण्डी कितने की है? कहां है?

माधव—(*झटका सा खाकर*) ओह ! —हां—उसका प्रबन्ध करना है । आप लोगों के नृत्य गान का आनन्द लेना चाहता था, परन्तु आरम्भ से ही कुछ उलझनें सामने आ गईं । फिर आऊंगा, इस समय तो जाता हूँ । नमस्ते ।

(*जाकर फिर लौटता है*)

माधव—मैंने इस युवक के सम्बन्ध में जो कुछ कहा उसको याद रखना । मैं इसको स्त्री–वेश में अवश्य देखना चाहूंगा । बात बहुत महत्व-पूर्ण है । स्वर्ण–रसायन के प्रसङ्ग से उसका सम्बन्ध है । (*जाता है*)

माया—कामिनी, माधव आपको बहुत प्यार करते हैं ।

कामिनी—(*तिरस्कार के साथ*) मेरी कल्पना इससे उल्टी है । वह आपको अधिक प्यार करने लगे हैं ।

माया—(*विस्मय के साथ*) मुझको ! आप क्या कहती हैं !! वह मेरी कला के फूलों के प्रेमी अवश्य हैं ।

कामिनी—कदाचित् वह फूलों की अपेक्षा (*मुस्कराकर*) फूलों की डालियों और पेड़ों को अधिक चाहते हैं ।

माया—(*कामिनी से लिपट कर*) ऐसा न कहो, कामिनी । उनके साथ अन्याय मत करो । मेरा जी न जाने क्यों इस युवक की ओर सब की अपेक्षा अधिक आकृष्ट हो गया है । लगता है कि पहले कला की और फिर सदा इसकी सेवा करती रहूँ । मैं तुम्हारे मार्ग का कांटा नहीं हूँ ।

कामिनी—(*मनमें सन्तुष्ट होकर*) मुझको क्षमा करना माया । कभी कभी मुँह से कुछ ऐसा ही निकल जाता है । (*उपेक्षा के साथ*) मैं सच कहती हूं मुझको अपनी कला की सराहना के आगे और किसी भी बात की ललक या वान्छा नहीं है । मैं कभी विवाह नहीं करूंगी । उनसे कह भी दिया है । आपको अवसर मिले तो आप भी मेरी ओर से कह देना ।

माया—मैं कहूंगी उनसे ! मुझसे तो नहीं बनेगा ।

(बलभद्र करवट लेता है और कराहता है । माया दौड़कर उसके पास जाती है । कामिनी भी धीरे धीरे पहुँच जाती है ।)

कामिनी—सो रहा है, चिन्ता मत करो ।

बलभद्र—अब तो नींद उचट गई है ।

माया—(*ज़रा चिन्ता के साथ*) कब उचटी ? कितनी देर हुई ?

बलभद्र—अभी, अभी, जब करवट बदली । *(सीधा लेटकर और कराहता हुआ)* वह कहां गए ?

कामिनी—कौन ?

बलभद्र—वह जो यहां खड़े थे, कुछ कह रहे थे । समझ में नहीं आया क्या कह रहे थे ।

कामिनी—तुम उनको पहिचानते हो ? वह नगरसेठ हैं । शायद उनको जानते होगे ।

बलभद्र—(*इधर उधर देखकर*) नहीं जानता । पहले कभी नहीं देखा ।

माया—*(मृदुलता के साथ)* मुझको जानते हो ?

बलभद्र—हां । पहले देखा है । आते-जाते में देखा है—अथवा न जाने कैसे ।

कामिनी—गाना-बजाना जानते हो ?

बलभद्र—जानता हूं—कुछ कुछ । अच्छे होने पर सुनाऊँगा ।

तीसरा दृश्य

[स्थान—उज्जैन की एक सड़क । सिद्ध को पकड़े हुए कुछ अधिकारी आते हैं । पीछे पीछे एक छोटा सा हुल्लड़ है । सिद्ध अब भी उसी

वेश में है। वह अद्‌भुत संयम और साहस के साथ, जैसे कुछ हुआ ही न हो, चल रहा है। उसके पास गहनों की पोटली नहीं है। पकड़े जाने के पहले ही उसने पोटली को एक गड्ढे में फेंक दिया था। वह गा रहा है। समय—दिन जब सिद्ध ने बलभद्र को लाठी से मारा था उसके कई दिन उपरान्त।]

जग सपना है, जग सपना, कोई नहीं अपना।
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी,
लूट लूट बन गए करोड़ी;
जिस दिन यम ने गर्दन तोड़ी,
मुंदी आँख सब सम्पत छोड़ी।
जग सपना है, जग सपना, कोई नहीं अपना,
हरी नाम जपना।

[गाने के बीच में माधव आ जाता है। ध्यान के साथ उसका गाना सुनता है और बारीकी के साथ उसकी आकृति का निरीक्षण करता है। गायन के समाप्त होते ही नगर निवासी माधव के विषय में बातचीत कर उठते हैं।]

एक—नगरसेठ होकर भी हुण्डी नहीं सकार पाए!

दूसरा—वेश्याओं पर अपना सब कुछ लुटा दिया। अब हो गए हैं फाँक।

एक—स्वयं कमाया होता तो पैसे की पीर होती। बाप कमाकर छोड़ गया! मुफ्त का पाया, आसानी के साथ गंवाया!!

(सिद्ध और माधव एक दूसरे को देखते हैं)

माधव—(*उन नगर-वासियों से*) मैं एक दिन फिर ज्यों का त्यों हो जाऊंगा, परन्तु तुम लोगों का सहारा न लेना पड़ेगा।

भीड के कुछ लोग—ओह! ओह!!

सिद्ध—(*स्वर बदलकर*) आप क्या नगरसेठ हैं ? प्रसिद्ध व्याडि ?

एक नगर निवासी—हां वही हैं। वेश्याओं के मोह में पड़कर इन्होंने अपना नाम माधव रख लिया है, माधव। बाप के दिए हुए नाम से घृणा हो गई थी न ?

एक अधिकारी—चुप रहो। (*सिद्ध से*) चलो बाबा ! न्यायालय में बात करना।

सिद्ध—(*बदले हुए स्वर में हीं*) मुझको इन पर दया आती है, अधिकारी। (*माधव से*) आपने पहले मुझको कभी देखा ?

माधव—ठीक ठीक नहीं कह सकता। आपकी आकृति सिद्ध नाम के एक ठग से मिलती है, परन्तु निश्चय नहीं कर पा रहा हूं।

सिद्ध—मेरा नाम सिद्ध नहीं है। मेरा नाम तो गिद्ध है।

एक नगर निवासी—कोई सही। न्यायदण्ड को एक बलि चाहिए। सिद्ध की हो चाहे गिद्ध की हो। फिर सिद्ध और गिद्ध मिलते-जुलते भी तो हैं।

अधिकारी—चुप। (*सिद्ध से*) चलो बाबा। (*माधव से*) नगरसेठ, न्यायाधीश जब आपसे प्रश्न करेंगे तब वहीं सब कुछ कहिएगा।

माधव—बन्दी के पास कोई माल मिला ?

सिद्ध—बिलकुल नहीं।

अधिकारी—माल की ढूंढ़ खोज हो रही है। संभव है मिल जाय।

सिद्ध—तो क्या इससे यह प्रमाणित हो जायगा कि मैंने चुराया था ? मेरे पास तो एक रत्ती भी किसी का कुछ नहीं निकला।

(*वह अकड़कर खड़ा हो जाता है*)

माधव—मुझको अभी सन्देह है कि तुम वास्तव में सिद्ध हो। परंतु यदि तुम सिद्ध ही हो तो तुम्हारी उपेक्षा और साहस पर मैं मुग्ध हूँ। तुम मुझसे भी बढ़कर निश्चिन्त निकले !

अधिकारी—अब और अधिक बात नहीं हो सकती है। नगरसेठ, आपको जो कुछ बूझना बताना हो वह न्यायाधीश के सामने आकर करिएगा।

माधव—कब आना होगा?

अधिकारी—जब वह बुलावें।

माधव—अच्छा।

(*पुलिन आता है और सिद्ध की ओर किंचित् देखता है*)

पुलिन—क्या इस व्यक्ति को वह मनुष्य समझा गया है जिसके ऊपर ठगी करने का आरोप है?

सिद्ध—(*आधे क्षण परिस्थिति को ताड़कर पूरे धीरज के साथ*) हां जी मुझ निर्दोष को यों ही बांध लिया गया है। जङ्गलों में भजन करते हुए चला जा रहा था; कहने लगे तुम्हारा नाम सिद्ध है, तुमने दो स्त्रियों के गहने चुराए हैं!

पुलिन—माधव, यह वह व्यक्ति नहीं हो सकता। निश्चय नहीं हो सकता। क्या कहते हैं आप?

माधव—शायद न हो।

पुलिन—कदापि नहीं है। मैं न्यायाधीश के सामने कह सकूंगा। बन्दी, तुम यह मत समझना कि अनाथ हो।

अधिकारी—आपको भी न्यायाधीश बुला लेंगे। हम अब सड़क पर अधिक नहीं ठहर सकते।

(*नगर वासी सिद्ध और अधिकारियों के पीछे पीछे जाते हैं। सिद्ध उसी गीत की एक कड़ी गाता हुआ जाता है। सड़क के एक किनारे माधव और पुलिन रह जाते हैं।*)

पुलिन—माधव, आपने यह क्या किया? उस सोने और उन मोतियों से आप हुण्डी को सकार सकते हैं। आपकी गद्दी लौट जाने से हम सब

व्योपारियों को कलंक लग जायगा। अब उन लोगों से अपना धन वापिस लेकर अब भी अपनी साख को उबार सकते हैं।

माधव—अब वह धन मेरा नहीं रहा। स्त्रियों को कुछ देकर उनसे फिर उसे लौटा लेना रौरव नरक का मार्ग बनाने के बराबर है।

पुलिन—समझ से काम लीजिए।

माधव—मुझको आपके उपदेश की आवश्यकता नहीं और न नगर-सेठी का मोह है।

पुलिन—हूं--ऊँ !!!

माधव—हां। *(दोनों अलग अलग दिशाओं में चले जाते हैं।)*

चौथा दृश्य

[स्थान—माया का कमरा। समय सन्ध्या उपरान्त। कमरे में माया और बलभद्र। बलभद्र का घाव अच्छा होगया है। वह कुछ पीला है और थोड़ा कृश, परन्तु देखने में फिर भी काफ़ी सुन्दर है।]

माया—*(चाव के साथ उसकी ओर देखकर)* तुमको स्वस्थ देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरा मन तुमको देख देखकर उमड़ता सा है।

बलभद्र—*(लजाकर)* मैंने आपको एक दिन अपना गाना सुनाने के लिए कहा था, सुनाऊँ ?

माया—अवश्य। परन्तु मुझसे अब 'आप' 'आप' न कहा करो—मुझको अच्छा नहीं लगता 'तुम' कहा करो, 'तुम'। समझे न ?

बलभद्र—*(और भी लजाकर)* आप--तुम--*(हँसकर)* अच्छा तुम ही कहूंगा। पर एक बार यह अवश्य कहलूँ कि आपने मुझको बचा लिया।

माया—नहीं। 'तुमने' कहो।

बलभद्र—तुमने मुझको बचा लिया।

माया—नहीं, मैंने नहीं। बचाया तो तुमको पुलिन ने था।

बलभद्र—पुलिन तुम्हारे कौन हैं?

माया—(*ज़रा गला साफ़ करके*) मेरे मिलने वाले हैं। मेरी कला को देखने के लिए कभी कभी आते हैं। क्यों? क्या बात है?

बलभद्र—बात कुछ नहीं है। यों ही पूछा। यह माधव कौन है? कामिनी का उनका कोई नाता है?

माया—माधव बहुत बड़े सेठ हैं—या थे। कामिनी की कला के चाहने वाले। हृदय उनका अब भी बहुत बड़ा है। उनके पास अब सम्पत्ति नहीं बची। थी पहले बहुत।

बलभद्र—कहां चली गई?

माया—जहां से आई थी। असल में उन्होंने स्वर्ण बनाने पर बहुत अनापशनाप ख़र्च किया।

बलभद्र—स्वर्ण बनाना मुझको आता है—मैं तुमको सिखलाऊँगा।

माया—कहां से सीखा? तुमको आता है?

बलभद्र—(*मनमें पछताकर*) मैं अपना गाना सुनाऊँ?

माया—पहले स्वर्ण बनाने की क्रिया बतलाओ न।

बलभद्र—(*मचलते हुए*) पहले मेरा गाना सुनो और अपना नाच दिखलाओ।

माया—(*रीझती हुई सी*) अच्छा, पहले अपना गाना सुनाओ। मैं तम्बूरा बजाती हूँ। (*तरंगित होकर*) तुम्हारे साधारण स्वर के ही चढ़ाव में चुम्बन और उतार में पुचकार है।

(*बलभद्र प्रसन्न होजाता है। माया हँसती हुई एक कमरे में से तम्बूरा उठा लाती है*)

बलभद्र—जग सपना है, जग सपना, कोई नहीं है अपना।
..............................हरीनाम जपना।

(माया तम्बूरा रखकर नाच उठती है। उसी समय कामिनी आजाती है। माया नृत्य बन्द करदेती है, बलभद्र का गायन भी रुक जाता है।)

माया—किवाड़ बन्द नहीं थे ?

कामिनी—*(मुस्कराकर)* तो क्या मैं लौट जाऊँ !

माया—*(लज्जित होकर)* नहीं, कदापि नहीं। मैंने वैसे ही पूछा। *(विचलित होकर)* कहीं और कोई आ जाता ! *(संभलकर)* तो क्या होता—उँह।

कामिनी—वही मैं कहती हूं। आज गाने और नाचने का दिन है। मैं एक सुखदायक समाचार सुनाऊँगी।

माया—वह क्या है कामिनी, सुनाओ ?

बलभद्र—*(ज़रा भयभीत होकर)* क्या समाचार है ! मैं तो बाहर के संसार से इतना अलग और इतना दूर हूँ कि मुझको कुछ भी पता नहीं, कहां क्या हो रहा है।

माया—बलभद्र, संसारसे दूर रहने में ही तुम्हारा कल्याण रहा है। बिलकुल स्वस्थ हो जाओ तब बाहर चलो फिरो और तभी सब कुछ सुनो समझो। हम लोगों ने तुमको कष्ट से बचाने के लिए ही अभी तक कोई पूँछतौंछ तुम्हारे विषय में नहीं की।

कामिनी—अब गाओ न, बलभद्र। मैं भी तुम्हारे स्वर में स्वर मिलाऊंगी, और माया अपने नृत्य से तुम्हारे गीत को सजा देंगी।

[बलभद्र गाता है। गीत—जग सपना, जग सपना इत्यादि। कामिनी उसका साथ देती है। माया नृत्य करती है। बीच में माधव आजाता है। वह एक ओर खड़ा रहता है। उन लोगों को मालूम

नहीं होपाता। कुछ क्षण याद वह आगे बढ़ता है और देख लिया जाता है। नृत्य और गान बन्द होजाता है]

माधव—(*शान्त मुस्कराहट के साथ*) बहुत अच्छा था यह कला-प्रदर्शन। होने दो न ? बलभद्र, माया, कामिनी।

[बलभद्र अपने नाम का माधव के मुँह से उच्चार पसन्द नहीं करता; सहम कर रह जाता है। माया लजा जाती है। कामिनी के मनमें तिरस्कार आता है]

कामिनी—आप यहां कब से चुपचाप खड़े थे ?

माधव—(*उसी मुस्कराहट के साथ*) जब से जग सपना हुआ और कोई अपना न रहा।

कामिनी—(*तिरस्कार का दमन करके और माधव की उदारता का ध्यान मन में लाकर*) यही गीत तो चल रहा था, और नाच के द्वारा माया उसी का अभिनय कर रही थी।

माधव—बहुत सुन्दर था। फिर होने दीजिए।

कामिनी—होने दो बलभद्र। करो आरम्भ।

बलभद्र—(*लजाकर*) अब मुझसे नहीं बनेगा।

माधव—एक बात बड़े कुतूहल की है। यह गीत तुमने किससे सीखा बलभद्र ?

बलभद्र—ऐसे ही। घूमते फिरते एक साधुओं की मंडली से सुना और याद कर लिया।

माधव—तुम कौन हो बलभद्र ? कहां के रहने वाले हो ? अपना पूरा परिचय दे सकोगे ?

माया—अभी नहीं माधव। इनको पूर्ण स्वस्थ हो जाने दो, फिर पूछना।

कामिनी—बड़े कुतूहल की बात क्या है माधव ? जो कुछ आपने थोड़ी देर पहले सुनाया था उसके अतिरिक्त भी क्या कोई और बड़ा कुतूहल है ?

माया—हमको नहीं सुनाया ! आज का ऐसा क्या समाचार है जिसमें कुतूहल भरे हुए हों ?

माधव—जो गीत यहां सुना उसी को वह बन्दी साधू गा रहा था। बड़ी धुन और लगन के साथ।

बलभद्र—(*विस्मय के साथ*) कौन बन्दी साधू ?

माधव—जो माया और कामिनी के आभूषण उड़ाने के अपराध-संदेह में पकड़ कर लाया गया है।

बलभद्र—(*उत्सुकता के साथ*) उसकी आकृति ? कैसा है वह ?

माधव—मुँह पर चेचक के दाग़ हैं। काले जटा जूट हैं। चेहरे का बनाव सिद्ध से बहुत मिलता है, परन्तु कण्ठ स्वर उससे नहीं मिलता।

कामिनी—दूसरा बड़ा कुतूहल यह है कि मेरा तुम्हारा सब गहना मिल गया। कुछ नहीं खोया।

बलभद्र—(*खड़े होकर पूर्ण आश्चर्य के साथ*) सब मिल गया ! सब गहना मिल गया !! उसी साधू के पास गहना मिला !!! (*भर भराकर बैठ जाता है*) ओफ़ ! (*माथा पकड़कर*) अवश्य बड़ा अचम्भा है !!

माधव—उसके पास नहीं मिला। परन्तु वह जहां पकड़ा गया था, उसके एक निकट के गड्ढे में पड़ा मिला। बहुत ढूंढ खोज के बाद।

माया—(*उत्सुकता के साथ*) कहां है वह गहना ?

माधव—अधिकारियों के पास है। बन्दी का न्याय हो जाने के उपरान्त आप लोगों को दे दिया जायगा।

बलभद्र—न्याय कब होगा ?

माधव—कल। हम सब को न्यायाधीश के सामने जाना पड़ेगा। (*बलभद्र पर कड़ी आंख फेरकर*) तुमको भी जाना पड़ेगा।

बलभद्र—मुझको क्यों ?

माधव—शायद इसी साधू ने तुमको लाठी से मार डालने की चेष्टा की थी।

बलभद्र—(*घबराकर*) न जाने कौन था वह। कह नहीं सकता मैं पहिचान पाऊंगा या नहीं।

माया—यह अभी पूर्ण स्वस्थ नहीं हैं। न जायं तो क्या बिगड़ेगा ?

बलभद्र—(*कनखियों देखकर*) हां, मैं अभी स्वस्थ नहीं हूं। चलने फिरने योग्य नहीं हूँ।

माधव—जाना होगा।

बलभद्र—(*हाथ जोड़कर, सूखे हुए गले से*) मैं बीमार पड़ जाऊंगा। मुझको वहां अभी जाने से बचा लीजिए।

माया—इनको स्वर्ण बनाने की क्रिया मालूम है। यह पूर्ण स्वस्थ होने पर बतलावेंगे। इनको बचाइए।

माधव—(*आश्चर्य के साथ*) स्वर्ण बनाने की क्रिया ! इनको मालूम है !! हूँ !!! कहां सीखी भाई तुमने ?

बलभद्र—अभी मत पूछिए। मैं हाथ जोड़ता हूँ। मेरे सिरमें पीड़ा होने लगी है।

माया—फिर कभी पूछ लीजिएगा।

माधव—(*संयत होकर*) अच्छी बात है फिर कभी सही।

कामिनी—वह हुण्डी सकरी या नहीं ?

माधव—(*निश्वास को दबाकर*) अभी नहीं सकरी।

कामिनी—तो अब अपनी साख की रक्षा कर लीजिए। हम लोगों का गहना दो चार दिन में घर आ ही जायगा। हम लोगों के इन गहनों को काम में ले आइए।

माधव—(*दृढ़ता के साथ*) यह नहीं हो सकता। मेरी साख कभी न कभी उबर कर रहेगी। मैं अब जाता हूँ। नमस्ते।

बलभद्र—(*जल्दी से*) नमस्ते।

(*माधव जाता है*)

कामिनी—इनकी सनक कुछ चढ़ गई है इन दिनों।

माया—बहुत उदार हैं। महापुरुष हैं।

बलभद्र—(*घबराकर*) हां।

माया—तुम घबराओ नहीं बलभद्र। जब तक बिलकुल स्वस्थ नहीं हो जाओगे मैं तुमको घर से बाहर नहीं निकलने दूंगी।

कामिनी—हां ठीक भी है। न्यायाधीश के सामने इनकी कल अटक भी क्या पड़ सकती है?

बलभद्र—मैं दण्डधारियों के सामने कभी भी न जाना चाहूँगा। आप मेरी सहायता करिए।

कामिनी—हम लोग तुम्हारी सहायता अवश्य करेंगी।

बलभद्र—(*चैन की सांस लेकर*) मैं आप लोगों को वह गीत फिर सुनाऊंगा। नित्य सुनाऊंगा।

कामिनी—(*मुस्कराकर*) एक शर्त पर हम तुम्हारी पूरी सहायता करेंगे। (*हँसकर*) स्त्री के वेश में गाओ। कण्ठ तुम्हारा मधुर है ही, देखूं कैसे ऊबते हो?

बलभद्र—(*लजाकर*) हूँ···ऊँ।

माया—(*मादक दृष्टि से हँसते हुए*) हां, हां। अवश्य। मैं अपने भड़कीले कपड़े देती हूं। अवश्य, अवश्य पहिनो। क्यों लजाते हो? मेरे कपड़ो को पहिन लेने से पुरुष से स्त्री थोड़े हुए जाते हो।

कामिनी—हम लोगों का अनुरोध मान जाओ।

बलभद्र (*सिर नीच करके*) अच्छी बात है।

(*माया हाथ पकड़कर बलभद्र को भीतर ले जाती है*)

कामिनी—ओह! मैं भूलगई। किवाड़ खुले पड़े हैं माया, मैं किवाड़ बन्द करके आती हूं (*नेपथ्य से माया—अच्छा।*)

[*कामिनी किवाड़ बन्द कर आती है, और कमरे मे सोचती हुई टहलती है। कुछ देर बाद नेपथ्य मे झकझोरने और हँसने का शब्द होता है जैसे कोई किसी को घसीट कर लारहा हो। माया हँसती हुई, झेंपते हुए बलभद्र को लाती है जो स्त्री वेश मे है और तड़क भड़क दार कपड़े पहिने है। कामिनी उसको देखकर चकित होती है बलभद्र सिर झुकाकर बैठ जाता है। माया हंसती रहती है।*]

कामिनी—वाह! सिर झुकाकर क्यों बैठे हुए हो? अभी अभी जिस तरह बैठे थे और जिस प्रकार खुलकर गाया था, वैसे ही बैठो और गाओ।

बलभद्र—(*झेंपते हुए और बरबस मुस्कराते हुए*) अच्छा। (*वह सिर ऊँचा कर लेता है*)

(*कामिनी उसको पहिचान लेती है*)

माया—कितने सुन्दर हैं यह?

कामिनी—(*उपेक्षा के साथ*) सुन्दरी, तुम्हारा क्या नाम है? चम्पा—केतकी—कटहरी या क्या?

बलभद्र—(*घबराकर*) क्या!!!

कामिनी—अबकी बार कितने हीरे मोती बनवाओगी, देवी ?

(बलभद्र भागने के लिए बगलें झांकता है)

माया—एं ! क्या !! सचमुच क्या यह वह है ?

(मनको धक्का लगने के कारण लड़खड़ाती है)

कामिनी—शान्त माया, शान्त । चम्पा चमेली, अब की बार छाती के पास छुरी नहीं है । ज़बानी धमकी से काम चल सके तो चलाओ ।

बलभद्र—(*बेचैन होकर*) ओफ़ ! हाय !! रक्षा !!!

कामिनी—अबकी बार अपनी देह और आत्मा किसको अर्पित करोगी पराग-पुलकित कुमारी !

(बलभद्र कामिनी के पैरों पर गिरता है)

बलभद्र—मेरी रक्षा करो देवी । (*कामिनी उसको उठा लेती है । माया अपना सिर पकड़ कर बैठ जाती है ।*)

कामिनी—(*तिरस्कार को दबाकर तो भी हंसते हुए*) अब तुमको नहानेके लिए घड़ा भर जल मँगानेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी । क्यों माया ?

माया—(*हाथ जोड़कर*) कामिनी, आप माधव से भी बड़ी हो । मुझको भीख दे दो ।

कामिनी—(*यकायक अनमनी होकर*) माया, अधीर मत होओ । बलभद्र, तुम्हारी रक्षा अवश्य की जायगी । तुम्हारा नाम क्या सचमुच बलभद्र है ?

बलभद्र—मेरा नाम सचमुच यही है ।

कामिनी—तुम साहसी हो बलभद्र । नाम प्रकट करने में भय या सङ्कोच क्यों नहीं लगा ?

बलभद्र—क्यों कि मैं जानता था कि इस नाम का जानने वाला संसार में केवल एक व्यक्ति है, और वह अपने पापों के कारण फिर कभी नहीं दिखलाई या सुनाई पड़ेगा ।

कामिनी--जो पकड़ा गया है क्या वह वास्तव में सिद्ध ही है ? उसके मुँह पर चेचक के दाग़ हैं।

बलभद्र--सब बनावटी हैं, देवी।

(*कामिनी क्रोध के मारे थर्राने लगती है।*)

माया--किया तो बहुत बुरा तुम लोगों ने, पर .....

बलभद्र--(*घिघियाकर*) मेरे ऊपर दया करो देवियो। मैं अनाथ हूँ। संसार में मेरा कोई नहीं है। उस दुष्ट सिद्ध की काली छाया के नीचे मैं भी कालिख में पुत गया, परन्तु मैं उसको पोछ डालूगा। धो डालूंगा।

कामिनी--(*अपने को संयत करके*) अबकी की बार, माया, पुरुष जाति पर दया करनी होगी। याद है, उस दिन नारी-जाति पर दया की भिक्षा मांगी गई थी ?

माया--आपके हाथ में है।

कामिनी--(*सोचती हुई*) अकेले मेरे हाथ में तो नहीं है। परन्तु गहने मिल गए हैं, इसलिए दया के मार्ग में न्यायाधीश को बहुत बाधा न होगी, और फिर, हम लोगों की इच्छा सहायता करने की है।

बलभद्र--अब मैं अपने इस वेश को दूर करदूं ?

कामिनी--(*मुस्कराकर*) जिस प्रयोजन से यह वेश करवाया गया था वह पूरा होगा। तुम अपने निज के वेश में हो जाओ, क्योंकि नृत्य-गान की ललक इस समय किसी के भी मन में नहीं है।

माया--मारा भी इनको उसी दुष्ट पापी ने ! क्यों मारा बलभद्र तुमको ? बड़ी चोट पहुंचाई हत्यारे ने !

बलभद्र- मै सिद्ध से आधा गहना लेकर यहीं लौट आना चाहता था। उसने नहीं दिया। लड़ पड़ा और मारा।

कामिनी--(*मुस्कराकर*) माया, थोड़े दिनों रहस्य को संयम के नीचे रखना।

माया--अवश्य। (*लजाती है*)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—उज्जैन का न्यायालय। एक गद्दी वाले ऊँचे मंच पर तकिया के सहारे, न्यायाधीश बैठा हुआ है। सामने लिखने की सामग्री रक्खी है। अगल-बगल ज़रा नीचे मंचों पर, धर्म-शास्त्र की पुस्तकें लिए नीतिशास्त्री बैठे हुए हैं। और नीचे चौकियो पर इधर-उधर पंच और नगर निवासी हैं। एक ओर कामिनी, माया, माधव और पुलिन यथास्थान। थोड़ी दूरपर अधिकारी और उपाधिकारी। कुछ सिपाही कमर बँधे हुए सिद्ध को लाते हैं। समय—दिन।]

न्यायाधीश—वन्दी, तुम्हारा नाम ?

सिद्ध—गिद्ध, न्यायाधीश। *(वह बदले हुए स्वर में बोलता है)*

न्यायाधीश—गिद्ध ! सिद्ध नहीं गिद्ध ?

सिद्ध—गिद्ध, न्यायाधीश, गिद्ध।

न्यायाधीश—कुछ सही। तुमने कामिनी और माया नाम की कलावन्तियों का गहना धोखा देकर चुराया ?

सिद्ध—*(चारो ओर देखकर, अकड़ के साथ)* कदापि नहीं। बिलकुल झूठ।

न्यायाधीश--कामिनी कलावन्त आगे आओ।

(*कामिनी निकट आती है*)

न्यायाधीश—क्या इसी मनुष्य ने धोखा देकर तुम्हारा और माया नाम की तुम्हारी सखी का गहना चुराया ?

कामिनी—(*सिद्ध को बारीकी के साथ देखकर--सिद्ध धड़ाके के साथ उसकी आंख में आंख मिलाता है*) चेहरे की रेखाएँ उस चोर से मिलती हैं, परन्तु रङ्ग, रूप और स्वर भिन्न हैं।

एक पंच--परन्तु फिर भी यह व्यक्ति वही मनुष्य हो सकता है।

सिद्ध—पञ्च होकर इस वेश्या का पक्षपात मत करना।

न्यायाधीश—(*कड़ककर*) चुप दुष्ट ! कलावन्त को वेश्या कहता है !! (*मुलायम पड़कर*) स्मरण रखना, बन्दी, हमारे यहां वेश्या तक का अनादर नहीं किया जाता। परन्तु इतना पर्याप्त नहीं है प्रमाणित करने के लिए। माया, इधर आओ। कहो तुमको क्या कहना है ?

(*माया निकट आती है*)

माया—(*सिद्ध को थोड़ासा देखकर*) सौ में अस्सी अंश विश्वास है मुझको—यह व्यक्ति वही है, वही।

सिद्ध--(*अप्रतिहत भाव से*) वही है, वही ! मरवा डालो एक निर्दोष साधू को !!

न्यायाधीश—अपराध की थोड़ी सी ही पुष्टि होती है इससे। और अधिक प्रमाण चाहिए।

सिद्ध--मैं एक बात पूछता हूं। उस सिद्ध-विद्ध नामधारी व्यक्ति के मुँह पर चेचक के चिन्ह थे ? और क्या दो व्यक्तियों का चेहरा थोड़ा-बहुत नहीं मिलजुल सकता इतने बड़े संसार में ?

माया--चेचक के चिन्ह तो सिद्ध के चेहरे पर नहीं थे।

न्यायाधीश—व्याडि, आपको कुछ मालूम है ? इधर आकर कथन कीजिए।

(माधव निकट आता है)

माधव—अब मेरा नाम व्याडि अंशतः भी नहीं रहा न्यायाधीश जी, मैं माधव हूं।

न्यायाधीश—अच्छा, माधव, कहिए क्या कहना है ?

माधव—*(सिद्ध की ओर बिना देखे हुए ही)* यही है वह व्यक्ति। यह इन्द्रजाल जानता है। इसने मुँह पर चेचक के दाग़ बना लिए हैं। स्वर भी किसी प्रयोग से बदल लिया है। पहली श्रेणी का धूर्त है।

सिद्ध—धूर्त हूँ मैं ! दिवालिए की जीभ में इतनी हिम्मत ! न्यायाधीश और पञ्चों के समक्ष इतना बड़ा साहस !!

न्यायाधीश—चुप बन्दी ! माधव, आपको इसे प्रमाण के न होते हुए धूर्त कहने का अधिकार नहीं है। शान्त होकर बात करिए।

माधव—आप ठीक कहते हैं, आर्य। मैं सचमुच बुरा हूँ। क्योंकि, मेरे पास धन-सम्पदा कुछ नहीं रही।

कामिनी—*(माया से धीरे से)* जाओ उसे तुरन्त ले आओ।

(माया व्यग्रता के साथ जाती है)

सिद्ध—न्यायाधीश, मैं निर्दोष घोषित किए जाने का अधिकारी हूं। छुट्टी दीजिए, मैं हरिभजन के लिए जङ्गल का पथ पकड़ूं। व्यर्थ ही मुझको बन्दीगृह में डाल रक्खा है।

पुलिन—मैं कुछ कहना चाहता हूं।

(सिद्ध तुरन्त उसकी ओर सिर मोड़कर देखता है और फिर यथावत खड़ा हो जाता है)

न्यायाधीश—आगे आओ।

पुलिन—मैंने भी सिद्ध नाम के व्यक्ति को अच्छी तरह देखा है। (*सिद्ध को देखकर*) यह वह व्यक्ति कदापि नहीं है। हो ही नहीं सकता। और, यह भी कहता हूँ कि सिद्ध उस प्रकार का अपराध कर ही नहीं सकता था। वह महापुरुष है। योगी और मन्त्र तथा रसायन का शास्त्री। सिद्ध ने न धोखा दिया और न चोरी की।

सिद्ध—जय हो! जय हो!! धन्य है!!! धन्य है!!!! न्याय और धर्म, नीति और शील ऐसे ही सज्जनों के चरित्र पर टिके हुए हैं।

एक पंच—परन्तु पुलिन ने यह तो नहीं कहा कि गूदगुदारे मुँह वाले इस व्यक्ति ने वह अपराध नहीं किया। सिद्ध ने न किया होगा।

सिद्ध—पञ्च जी, परमात्मा का ध्यान करो। अन्याय की बात कहने से पञ्च को रौरव नरक मिलता है।

न्यायाधीश—शान्त बन्दी। पञ्च, बिना अच्छे प्रमाण के आपको बन्दी पर कोई सन्देह नहीं करना चाहिए। अभी तक कोई स्पष्ट प्रमाण सामने नहीं है।

सिद्ध—इसलिए अब मुझको मुक्ति मिलनी चाहिए।

न्यायाधीश—(*एक अधिकारी से*) गहनों की पोटली लाओ।

(*अधिकारी जाता है और गहनों की पोटली लाकर न्यायाधीश के मंच पर रख देता है*)

न्यायाधीश—पहिचानो कामिनी, इनमें से तुम्हारे गहने कौनसे हैं?

(*कामिनी पहिचान कर अपने गहने एक ओर रख देती है। सिद्ध लालचभरी दृष्टि से उन गहनों को देखता है*)

कामिनी—ये मेरे हैं और ये माया के हैं।

न्यायाधीश—माया अपने गहने स्वयं पहिचानेगी। कहां है माया? बुलाओ उसको।

एक उपाधिकारी—माया कलावन्त ! ओ माया कलावन्त !!

माया—(*नेपथ्य से*) यह आई ।

(*आगे आगे माया आती है उसके पीछे पीछे सिर से पैर तक चादर डाले हुए बलभद्र आता है ।*)

न्यायाधीश—माया, यह तुम्हारे साथ क्या है ?

(*सब लोग उसकी ओर देखते हैं*)

माया—आर्य, हमारा सब से बड़ा प्रमाण, हमारा सब से बड़ा समर्थन ।

सिद्ध—(*ढिठाई के साथ*) प्रमाण की कमी को स्वांग से पूरा किया जाने का विधान रचा लाई है ! हूं !

न्यायाधीश—इसकी चादर हटाओ, माया । यह कौन है ?

माया—न्यायाधीश जी, इसका नाम हरसिंगार है । यह मल्लिका मञ्जरी के पास गया था । वहीं रह गया ।

(*सिद्ध चौंक पड़ता है । माया संतोष के साथ उसके इस भाव को देखती है । कामिनी मुस्कराती है । माधव को थोड़ी सी हँसी आती है । पुलिन ध्यानपूर्ण हो जाता है ।*)

न्यायाधीश—चाहे तुम कलावन्त हो चाहे कोई और, परन्तु यह ध्यान रखना कि यह स्थान न्यायालय है, परिहास का स्थान नहीं । अपना गहना पहिचानो और जाओ ।

माया—हरसिंगार कभी नहीं चूकता और न चूकने देता है, न्यायाधीश । वह बोलेगा । बोलो हरसिंगार, अपना नाम बतलाओ ।

बलभद्र—(*बिना चादर हटाए*) मेरा नाम बलभद्र है और बन्दी का नाम सिद्ध ।

सिद्ध—बलभद्र ! बलभद्र !! बलभद्र कहां से आया ?

बलभद्र—हां बलभद्र, गुरु महाराज। वह श्मशान में से उठकर आया है।

न्यायाधीश—(*रुचि के साथ*) जान पड़ता है वन्दी, तुम बलभद्र नामक किसी व्यक्ति को जानते हो? कौन बलभद्र?

सिद्ध—(*उसकी ढिठाई विदा लेती है, माथे पर पसीना आ जाता है। पसीना पोंछकर*) बलभद्र! ओह, बलभद्र!! असम्भव, असम्भव। मैं नहीं जानता बलभद्र कौन है।

बलभद्र—(*चादर डाले हुए*) वकुल का फूल! बेले का फूल!!

(*सिद्ध भरभराना चाहता है परन्तु नियन्त्रण कर लेता है और अपनी छाती पर मुट्ठियां कसकर खड़ा हो जाता है।*)

सिद्ध—मेरी समझ में नहीं आ रहा है ये फूल क्या हैं।

माधव—(*ज़रा आगे बढ़कर*) तपस्या में बड़ा बल है सिद्धराज, या गिद्धराज!

न्यायाधीश—(*विनोद मग्न मुस्कराहट के साथ*) शांत माधव जी। वकुल, बेला, बलभद्र, तुम, जो कुछ भी हो, वन्दी को जानते हो?

(*माया बलभद्र को स्पर्श का संकेत करती है।*)

बलभद्र—(*धीरे से, मुहँ पर से चादर हटा कर*) मैं बन्दी को जानता हूँ और बन्दी मुझको जानता है।

(*बलभद्र को देखकर सिद्ध भरभराकर गिरता है। सिपाही उस को उठा लेते हैं और संभालते हैं।*)

सिद्ध—(*कठोर संयम करके*) ओफ़! इसने कितना छल किया!! कितना कपट किया!!! गुरुघाती!!!!

(*माधव हँस पड़ता है। कामिनी भी। पुलिन विस्फारित लोचन उन दोनों—सिद्ध और बलभद्र को देखता है। माया हर्षमग्न है।*)

बलभद्र—शिष्य के चेत, ज्ञान और विवेक का अपहरण करने वाले, और अपने स्वार्थ के लिए शिष्य को पथ-भ्रष्ट करने वाले गुरु के लिए क्या कहा जायगा सिद्धराज ? तस्कर या क्या ?

न्यायाधीश—(*बहुत उत्साह के साथ*) तुम अपना कथन करो बलभद्र, निर्भीक होकर बोलो।

बलभद्र—मैं अनाथ था न्यायाधीश। इन्होंने, इनका नाम सिद्ध है, मुझको अपने इन्द्रजाल के चमत्कार में फसा लिया। प्रकट किया कि स्वर्ण रसायन जानते हैं। मैं मोह में बिंध गया। यह अपने षड्यंत्रों में मुझको घसीटते रहे और मेरा उपयोग करके नाना प्रकार की वंचनाएँ रचते रहे। कामिनी और माया के गहने इन्होंने चुरवाए। जब हम लोग वेश बदलकर उज्जैन से निकल भागे मेरा लोभ और विवेक एक साथ पड़े। मैंने सोचा अपना हिस्सा लेकर उज्जैन लौट पड़ूं और सुंदरी मायाको दे दूँ।

सिद्ध—सुन्दरी माया ! नीच !! स्त्री के मोह में फसने वाले !!!

बलभद्र—मैंने इनसे अपना हिस्सा मांगा और इन्होंने लाठी से मेरा सिर तोड़ दिया।

सिद्ध—ओफ़ ! कैसे बच गया पापिष्ट !!

बलभद्र—(*प्रसन्न होकर पुलिन की ओर संकेत करके*) यह सज्जन मुझको उठा लाए और माया ने मेरी मरहमपट्टी और सुश्रूषा की। आप समझे होंगे मर गया और शव को गीदड़ खा गए।

माधव—धन्य माया। धन्य है तुमको।

(*कामिनी ज़रा चौंक पड़ती है*)

न्यायाधीश—बन्दी, अब क्या कहते हो ? सच बोलने से कुछ लाभ हो सकता है, यदि कामिनी और माया चाहें तो। झूठ बोलने पर किसी के भी, कुछ भी अन्यथा चाहने पर शूली से बचना कठिन होगा।

सिद्ध—(*इधर उधर आंख फेरकर और बचने का कोई उपाय न समझकर*) मैं अपराधी हूं, न्यायाधीश। मैं बहुरूपिया हूँ। मेरा नाम सिद्ध है। चेहरे पर गूदें बनावटी हैं। (*सिर नीचा करके*) बलभद्र मेरा सहकारी है। गहने इन दोनों स्त्रियों के हैं। मैंने गट्ठे में डाल दिए थे।

न्यायाधीश—वह अभी निरा युवक है। तुम्हारी चालों में फंसकर कुमार्ग में गया। वह निर्दोष है।

पुलिन—ओफ़ कितना बड़ा धोखा खाया मैंने !!

(*जाता है*)

न्यायाधीश—कलावन्तियो, तुम अपना अपना गहना ले लो। अपराधी को शूली तो न दी जावेगी, परन्तु इसके हाथ काटे जावेंगे जिसमें वह फिर कोई अपराध न कर सके।

(*सिद्ध गिरने को होता है। सिपाही संभाल लेते हैं*)

कामिनी—मैं अपराधी को हृदय से क्षमा करती हूँ। इसको सुधरने का अवसर दीजिए न्यायाधीश जी। इसके हाथ मत कटवाइए। हाथ कटने पर फिर जीवन चलाने के लिए यह और अनेक अपराध करेगा।

न्यायाधीश—तुम क्या कहती हो, माया ?

माया—मैंने भी क्षमा किया। परन्तु बलभद्र को लाठी से मारा गया था, न्यायाधीश।

न्यायाधीश—हां, एक वह बड़ा अपराध तो अभी शेष है।

बलभद्र—जब इन दोनों महानारियों ने इनको क्षमा कर दिया तो मैं ही क्यों ओछा कहलाऊँ और जिसको गुरु कहता चला आया उसको क्षमा न करदूँ ? मैंने भी क्षमा किया।

न्यायाधीश—पञ्चो, आपकी क्या सम्मति है ?

एक पंच—जब वादी इसको दण्ड नहीं देना चाहते तब हम लोगों को ही दण्ड दिलवाने की क्या पड़ी? परन्तु उज्जैन नगरी में इसने ऐसा घोर कर्म किया, इसलिए गधे पर बिठलाकर देश-निकाला दे देना चाहिए।

सिद्ध—(*आंखों पर हाथ रखकर*) यह दण्ड शूली से भी अधिक बुरा और कठोर है। मुझको बचा दीजिए, मैं अपने को सुधारूँगा।

माधव—न्यायाधीश और सभासदो, सिद्ध कैसा भी हो परन्तु शास्त्री है। स्वर्ण-रसायन जानता है। कामसे कम उसने प्रयोग अनेक किए हैं। मैं प्रार्थना करता हूँ इसको अपमानित मत कीजिए।

एक पंच—इसने आपको दिवालिया कहा था।

माधव—उसने सच कहा था। मेरे पास कुछ नहीं है, केवल शास्त्र का आदर है।

दूसरा पंच—मैं समझता हूं इसको मुक्त ही कर देना चाहिए। यदि फिर कभी छलकपट करे तो इसको प्राणदण्ड मिलेगा।

न्यायाधीश - तुम स्वर्ण-रसायन जानते हो, सिद्ध?

सिद्ध—हां—नहीं न्यायाधीश, मैं नहीं जानता हूं। जो कुछ इधर उधर सुना उतना ही मुझको मालूम है। पर यह निर्विवाद है कि स्वर्ण-रसायन है। विद्या सच्ची है। मैं झूठा हूँ।

न्यायाधीश—इनको छोड़ दो अधिकारियो। सिद्ध, तुम अपना भला चाहो तो अब उज्जैन में मत रहना।

सिद्ध—(*हाथ जोड़कर*) सबको धन्यवाद। मैं जाता हूँ। (*सिद्ध जाता है। और लोग भी जाते हैं।*)

दूसरा दृश्य

[*उज्जैन की सड़क। समय दिन। सिद्ध नीचा सिर किए हुए चला जा रहा है। उसके पीछे भीड़ है।*]

एक—यह जादू करता था ! जादू से पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष बनाता था !!

दूसरा—मुझको स्त्री बना सकोगे गिद्धराज ? गिद्धराज या सिद्धराज, क्या नाम है जी तुम्हारा ?

एक—मौनधारण किया है बेटा ने !

दूसरा—कुछ गुनगुना रहे हो क्या बिडाल तपस्वी ?

एक—मेरा जी चाहता है इसको भुस करदूँ। कैसा लम्पट और लबरा है !

(भीड़ पास आती है)

एक—ज़रा इसके ऊपर धूल डालो, देखो फिर कैसा मुँह बनाता है और कितने करतब करता है। नटखट बेटे, बन्दर बन सकोगे, बन्दर ?

(कुछ लोग उस पर धूल फेंकते हैं)

सिद्ध—दुहाई है, दुहाई ! मुझको बचाओ !!

एक—पाजी, दुष्ट उन भोलेभालों ने छोड़ दिया होगा, पर हम उतना सस्ता नहीं छूटने देंगे।

(सिद्ध मुहँ पर पड़ी हुई धूल रगड़ कर पोंछता है। रगड़ के कारण चेहरे की झिल्ली फटकर खिंच जाती है और दाढ़ी भी टूट जाती है)

दूसरा—ओ हो हो ! यह तो बहुरुपिया है !! कुछ उपहार दो, कुछ उपहार इस रंगे स्यार को।

एक—फटे जूतों का हार पहिना दो, बस।

सिद्ध—दुहाई है ! दुहाई है !! *(जूतों का हार पहिनाने की कोशिश की जाती है उसी समय कुछ अधिकारी आ जाते हैं और उसको बचाकर ले जाते हैं। भीड़ उसके पीछेपीछे गुलगपाड़ा करती हुई जाती है।)*

तीसरा दृश्य

[स्थान कामिनी के भवन का एक कमरा । मञ्च गलीचों से सजे हुए हैं । कामिनी के साथ माधव आता है । समय सन्ध्या के दो घंटे पीछे ।]

कामिनी—आपको यदि विश्वास है कि स्वर्ण-रसायन वास्तव में एक शास्त्र है, विज्ञान है, तो उसका अनुशीलन करते रहिए। परन्तु आप उसमें अपने को खपा तो मत डालिए ।

माधव—अपने को खपाए बिना कोई भी मनुष्य विज्ञान का अधिकारी नहीं बन सकता । मुझको जीवन में अब और करना भी क्या है ? कामिनी, केवल एक बाधा बारबार आ जाती है ।

कामिनी—(*आतुरता के साथ*) वह क्या है माधव ? क्या है वह बाधा ?

माधव—(*अपने को संयत करके*) बाधा कुछ ऐसी है भी नहीं । मन अटक अटक जाता है । आपका गाना सुनना चाहता हूं और माया का नृत्य देखना चाहता हूं । बलभद्र भी अच्छा गाता है । संगीत से मेरे विवेक को प्रेरणा मिलती है ।

कामिनी—(*मुस्कराकर*) माया और बलभद्र विवाह कर रहे हैं । वे इस समय हमारे प्रमोद में नहीं आवेंगे ।

माधव—(*इस समाचार का कोई भी प्रभाव व्यक्त न करते हुए*) अच्छा, ठीक है । माया तो बहुत दिनों से विवाह करने की इच्छा कर रही थी । विचारा पुलिन रह गया । कामिनी आप अपना कोई गीत सुनाओ । फलों का गीत ।

कामिनी—(*उत्साह के साथ*) अभी लीजिए ।

(कामिनी तम्बूरा लाकर गाती है)

गीत

हरसिंगार, बकुल मतवारे हो गए,
कदम्ब, केतकी, बेला, पंकज सो गए;
कौन सुरभि छितराता है ?
कौन पराग बिछाता है ?
सपने में कुछ आया,
जगने पर कुछ पाया;
जब श्यामा ने गाए रुक रुक राग नए
हरसिंगार, बकुल मतवारे हो गए,
कदम्ब, केतकी, पंकज, बेला सो गए।

(माधव की आंखें छलछला आती हैं)

कामिनी—यह क्या है माधव ?

माधव—*(मुस्कराकर)* आनन्द के आंसू हैं, कामिनी।

कामिनी—*(माया के विवाह-प्रसंग का स्मरण करके उमड़ते हुए तिरस्कार को दबाकर)* आनन्द के हैं या किसी चञ्चल विराग के ?

माधव—*(चौंककर)* आह ! *(यकायक मुस्कराकर)* हां कामिनी, आप ठीक ही कहती होंगी। चञ्चल विराग के। पतझड़ के। *(गंभीर होकर)* मैं एक पोथा लिखता रहता हूँ, आपको मालूम है ?

कामिनी—*(बेमेल बात समझकर, विस्मय के साथ)* आप अपने प्रयोगों को किसी पोथे में लिखते रहते हैं, इतना ही मैं जानती हूं।

माधव—हां, स्वर्ण-रसायन के प्रयोगों को और अपने जीवन के प्रयोगों को भी।

कामिनी—जीवन के प्रयोग कैसे ?

माधव—फूलों के सन्देह संवाद और गीत । पतझड़ की खरखराहट और ओस की बिदाई । ये सब जीवन के अनुभव । बस, (*जाते हुए हँसकर*) कल जीवन की संध्या-कल सन्ध्या समय कोई अन्तिम प्रयोग—

(*पागलों की तरह हँसता हुआ जाता है ।*)

कामिनी - माधव ! माधव !!

चौथा दृश्य

[स्थान—उज्जैन के बाहर शिप्रा नदी का किनारा । किनारे पर पत्थर के ढोंके और बीहड़ है । ऊबड़खाबड़ किनारे के नीचे से शिप्रा बहती हुई चली जा रही है । प्रवाह के कारण शब्द हो रहा है । हाथ में एक पोथी लिए हुए माधव आता है और पानी के किनारे एक चट्टान पर बैठ जाता है । उसके पीछे पीछे, चुपके चुपके कामिनी आती है और, माधव से ओट में, नदीके बहाव की ओर एक चट्टान पर बैठ जाती है । समय सन्ध्या के थोड़ा पहले ।]

माधव—शिप्रा नदी, तुझको नमस्कार है । तूने अनगनित लोगों के सुख-दुख असंख्य युगों से देखे हैं । मेरी भी एक छोटी सी स्मृति अपनी गोद के मोद में भर ले । इस तुच्छ पोथी को । परन्तु एक साथ सबकी सब तेरे पेट में डालूँगा तो तू इसको पचा न सकेगी । कहीं ज्यों की त्यों यह गन्दगी किसी के हाथ पड़ गई तो मेरी ही तरह उसका भी सर्वनाश हो जायगा । इसलिए दिवालिए की भेट तुझको एक एक पन्ना करके मिलेगी । इसके उपरान्त मैं अपने को समूचा तुझे भेट करूँगा । तू मुझको पचा सके या न पचा सके, परन्तु किसी को भी पथभ्रष्ट तो न कर सकूँगा ।

[पोथी का एक पन्ना फाड़कर नदी में डालता है । वह बहकर कामिनी के पास पहुंचता है । कामिनी उसको उठाकर पढ़ती है । उसमें ताम्बे पर पलाश के प्रयोग लिखे हैं । माधव दूसरा पन्ना फाड़ता है । उसी प्रकार नदी में बहाता है । इसमें थूहर के दूध के

प्रयोग लिखे हैं। तीसरे और चौथे मे विष्णुकान्ता और ब्राह्मी के रस के प्रयोग अंकित हैं। पांचवें छठवें पर रक्तामल के अर्थों के अनुमान हैं। सातवें पर सिद्ध की भेंट का संक्षेप में वर्णन है। उसको शास्त्री तो बतलाया गया है, परन्तु विश्वास के योग्य नहीं। आठवें पर माया को सुन्दरी और श्रेष्ठ नर्तकी कहा है, परन्तु छिल्ली और पुलिन को संकीर्ण और डाह खाने वाला, और, दोनों को साधारण मनुष्यों की श्रेणी वाला। नवें पन्ने पर अपना और कामिनी का स्नेह सम्बन्ध प्रकट किया है। लिखा है, 'मैं कामिनी के लिए अपने को मिट्टी में मिला सकता हूं, वह चाहे मेरे साथ विवाह करे चाहे न करे।' अगले कुछ पन्नों मे कामिनी की संगीतकला के कोमल और विशाल सौन्दर्य का वर्णन और उसपर अपना अखण्ड अनुराग प्रकट किया है।]

कामिनी—(*पुलकित होकर, धीरे से*) ओह !

[आगे के पन्नों में भाँति भाँति के फूलों के नाम लिखे हैं और बोलचाल की भाषा में उनके कल्पित ध्वन्यात्मक अर्थ। एक पन्ने पर कामिनी का नाम कुमुदिनी अपना मचकुन्द, अपने प्रेम-सम्बन्ध का नाम परिमल शब्द से व्यक्त किया है। वहाँ लिखा है, 'कुमुदिनी और मचकुन्द का परिमल अनन्त है और अभेद्य, वह सूंघा जासकता है, परन्तु देखा नहीं जासकता।' उसके नीचे लिखा है, 'मैं स्वर्ण-रसायन को जान लेने के उपरान्त कुमुदिनी पर मचकुन्द के भीतर वाले पराग को बरसाऊंगा और फूलों की एक भाषा बनाऊंगा जिसको हम लोग अपने संयुक्तजीवन मे सदा बोला करेंगे।' इसके बाद के एक पन्ने में उसने अपनी आर्थिक असमर्थता पर क्षोभ और क्लेश प्रकट किया है। उसको इस बात की मार्मिक पीड़ा रहती है कि वह कुमुदिनी पर और अधिक गेंदे के फूल (स्वर्ण) नहीं बरसा सकता।]

कामिनी—(*कातर होकर, धीरे से*) हाय माधव, मैं आपको आज समझ पाई !

[*इसके बाद के एक पन्ने पर स्वर्ण-रसायन के फिर कुछ प्रयोग हैं, और रक्तामल शब्द का असली अर्थ जानने के लिए बहुत बेचैनी व्यक्त की है। इसके बाद के ही पन्ने पर उसने लिखा है, 'रक्तामल का अर्थ रक्त नहीं है। जब मैं कड़ाही में रसायन का प्रयोग कर रहा था एक खूटी से मेरा सिर टकराया और रक्त की धार बह निकली। मेरा रक्त कड़ाही में गिरा। मैंने रसायन का निरीक्षण किया। उस रक्त का रसायन के ऊपर रत्ती मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा।*]

कामिनी—(*कातरता के मारे थरथराकर, कुछ ऊंचे स्वर में*) हे भगवन्! इन्होंने चुपचाप कितने कष्ट भुगते हैं !

माधव—कोई कुछ यहां बोला है ? (*कान लगाकर*) नहीं। यहां पत्थर और पानी के सङ्गम की भाषा के सिवाय और कोई बोली हो ही नहीं सकती। (*निश्वास छोड़कर*) अब कभी फूलों की बोली, कुमुदिनी का सङ्गीत सुनने को नहीं मिलेगा। (*फटी हुई पोथी को उठाकर*) निर्मम पोथी, तुझको नष्ट करके (*ऊँचे स्वर में*) अपने को भी समाप्त करूँगा।

[*कामिनी उठना ही चाहती है कि एक फटा हुआ पन्ना ओर बहकर उसके हाथ आता है। उस पन्ने पर उसी का गाया हुआ फूलों वाला गीत है। इस पन्ने के नीचे लिखा है—'पूर्ण पारिजात पुष्प के प्रेम-पराग का भूखा, स्वर्ण के मोह में अन्धा होकर शिप्रा की शरण लेगा।' इस लेख के नीचे उसी दिन की मिति और वार अंकित हैं।*]

माधव—(*खड़े होकर*) मैं आता हूँ, शिप्रा। अपनी छाती खोल दो।

कामिनी—(*खड़े होकर*) कभी नहीं, माधव। कभी नहीं। तुम्हारी कुमुदिनी के जीतेजी ऐसा कभी नहीं होगा। ठहरो।

[*कामिनी उसके पास वेग के साथ पहुँच जाती है। माधव अचकचाकर खड़ा रह जाता है। कामिनी उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचती है। वह शिथिल होजाता है। कामिनी उसका हाथ पकड़े हुए किनारे से कुछ दूर हटा ले जाती है।*]

माधव—(*कामिनी के एक हाथ में फटे हुए पन्नों को देखकर*) उस दुष्ट पुस्तक के ये स्मारक आपके हाथ में कैसे आगए ?

कामिनी—वह दुष्ट पुस्तक नहीं है। आपके यशस्वी हाथों से लिखी गई थी। आपने क्यों फाड़ डाला ?

माधव—(*विरक्त भाव से*) उसमें कुछ नहीं था।

कामिनी—उसमें सब कुछ था। उसमें फूलों की बोली थी।

माधव—(*गद्‌गद् होकर*) हां कामिनी उसमें कुछ था। परन्तु सोचा था जब मैं ही न रहूंगा तो किसी भी बोली का क्या प्रयोजन ?

कामिनी—(*हाथ पकड़े हुए, मुस्कराती हुई*) और अब ?

माधव—(*आँखों में आंसू आ जाते हैं*) अब आपके हाथ में हूं।

कामिनी—नहीं, ऐसा नहीं है। मैं आपके हाथ में हूँ। मेरी कला आपके हाथ में है।

माधव—निरीह के हाथ में ! निकम्मे और असमर्थ के हाथ में !!

कामिनी—(*उसके मुँह पर हाथ रखकर*) ऐसा कभी मत कहना। आपकी ही उमंग से मेरी कला को तरंगें मिलती थीं। मेरे भीतर की तुच्छता जो कभी कभी तिरस्कार का रूप ओढ़ लेती थी आज से सदा के लिए चली गई। क्या आप मेरी लाज रक्खेंगे ?

माधव—प्राणों की होड़ लगाकर।

कामिनी—तो आपको मेरा संपूर्ण गहना स्वीकार करना पड़ेगा। उससे आप अपनी साख को फिर उबारिए, व्योपार करिए और स्वर्ण रसायन के प्रयोग करते रहिए।

(*कामिनी उत्तर की प्रतीक्षा में मुस्कराती है*)

माधव—(*कोमल और दृढ़ स्वर में*) आपकी प्रेम पूर्ण भेंट का स्वीकार न करना मेरे लिए अत्यन्त कृतघ्न और क्रूर कर्म होगा ......

कामिनी—(*हँसकर*)कुमुदिनी और मचकुन्दका परिमल अनन्त और अभेद्य है, इसका क्या अर्थ है?

माधव—(*आश्चर्य के साथ हँसते हुए*) आपने न केवल इन पन्नों को बटोर लिया, वरन् पढ़ भी लिया है! कुमुदिनी और मचकुन्द का परिमल सूंघा जा सकता है, परन्तु देखा नहीं जा सकता।

कामिनी—(*हँसकर*) देख भी लिया गया है। लो अपने ये पन्ने।

माधव—आपके हैं कामिनी वे अब। उनमें फूलों का गीत भी है। आपने पढ़ा होगा?

कामिनी—और स्वर्ण-रसायन भी।

माधव—स्वर्ण-रसायन का नाम न लो, कामिनी। मुझको उस शब्द से ही घिन हो गई है। स्वर्ण-रसायन नितान्त मृग-मरीचिका है—और, कुछ ठगों का केवल ढोंग।

कामिनी—(*एक क्षण सोचकर*) मेरी समझ में रक्तामल का अर्थ इसी क्षण आया है। सच्चा अर्थ बतलाऊँ?

माधव—(*आतुरता के साथ*) अवश्य।

कामिनी—रक्त का सार—पसीना। बिना पसीना बहाए हुए सोना नहीं बनता और न मिलता ही है। जो लोग बिना पसीना बहाए हुए सोना बनाने या पाने की लालच करते हैं वे .

माधव—(*टोककर*) वे या तो मेरी तरह कष्टों के गड्ढों में गिरते हैं या सिद्ध की तरह ठग बन जाते हैं। और, आप सरीखी बचाने वाली, मुझ सरीखे बिरलों को ही प्राप्त हो सकती है।

कामिनी—तो अब चलो श्रम में और लग जाओ पसीना बहाने में। उसी की प्रेरणा में मेरी कला को भी सार्थकता और स्यात् महानता मिलेगी। (*मुस्कराकर*) तानों के लगाने में मुझको भी कभी कभी पसीना आ जाता है। और अधिक परिश्रम करूंगी तब और अधिक पसीना आवेगा और तब मैं और भी अधिक आनन्द पाऊंगी।

माधव—(*नीचा सिर करके मुस्कराते हुए*) और मेरे, आपके जीवन की धाराएँ संयुक्त होकर बहेंगीं।

कामिनी—(*मुँह मोड़कर मुस्कराते हुए*) आ गए उन्हीं बातों पर ? चलो यहां से। फूलों का गीत सुनाऊँगी। आज नृत्य भी करूंगी।
(*दोनो एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए जाते है।*)

पांचवां दृश्य

[*स्थान--उज्जैन के बाहर हरे भरे खेत और फूल फल वाले पौधे और वृक्ष। समय प्रातःकाल। नेपथ्य मे सामूहिक गान। फूलों वाला गीत, 'हर सिंगार बकुल मतवारे होगए ।' माधव आता है।*]

माधव—गेहू में बालें फूट आई हैं। उनमें छोटे छोटे से फूलों की फुनगियां किरणों की तरह निकल पड़ी हैं।

(*गीत गाया जाता है। उसके रुकने पर माधव खेत मे जाता है*)

माधव—चने का लाल फूल, सरसो का पीला, अलसी का नीला, और गेंदे का सुनहला, पसीने की रश्मियां है। सूर्य इनको पालता है, चांदनी इनको गोद में खिलाती है।

(गीत फिर गाया जाता है। माधव पेड़ों के नीचे घूमता है। गीत के रुकने पर)

माधव—आम में मञ्जरी भगवान ने जड़ दी! भगवान ने पसीने को स्वर्ण का रङ्ग दे दिया। इस वृक्ष में एक दिन पीले पीले रसीले बड़े बड़े आम लगेंगे। ये नीम भी फूलेंगे। वह करौंदी भी। *(हँसकर)* और वह पलाश और सेंभर भी। ऊषा और सन्ध्या के रङ्गों से होड़ लगाने वाले फूल होंगे इनके।

(फिर गीत गाया जाता है। उसके रुकने पर)

माधव—जब अन्न पकने को आवेगा तब खेतों से कैसी महक वह उठेगी। जब खलिहान में अन्न इकट्ठा हो जावेगा और रात में चांदनी अन्न के ढेरों पर बरसेगी तब नीम और करौंदी के फूलों की सुगन्धि उनको सहलावेगी और चारों दिशाएँ मधुर मधु छिड़केंगी। सब लोग गा उठेंगे। नाच उठेंगे।

(फिर गीत गाया जाता है। उसके रुकने पर)

माधव—फिर परमात्मा से हाथ जोड़कर प्रार्थना करेंगे। *(हाथ जोड़ कर और सिर नवा कर)* फूलों पर ओस के कण चमकते रहें। जीवन को फूलों का सौन्दर्य नित्य सजगता देता रहे। दुपहरी की लू और रात के हिम और शीत में भी सुमनों के कभी न कभी खिलने की आशा जीवन को सहारा दिए रहे। सबका जीवन सुन्दर हो। सब सुखी हों। प्रभो, सब सुखी हों।

(गायन होता रहता है। माधव नतमस्तक हाथ जोड़े खड़ा रहता है। यवनिका गिरती है।)

। इति ।

वर्मा जी की अनुपम कृति जो युग-युग तक हिन्दी मे सौरभ, प्राण और ओज बनाये रहेगी।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई।

हिन्दी उपन्यासों में सर्वथा सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ जिसका मराठी, गुजराती सिंधी, तैलगू तथा उर्दू में अनुवाद हो रहा है।

* कुछ सम्मतियां *

(१) प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वाइस-चान्सलर पब्लिक सर्विस कमीशन के चेयरमैन डा० श्री अमरनाथ जी झा— "झांसी की रानी मैंने आद्योपांत पढ़ी और उससे बहुत प्रभावित हुआ। ऐतिहासिक उपन्यासों में इसका सर्वोच्च स्थान है। अनुसन्धान में बहुत परिश्रम लगा होगा। बातचीत की भाषा स्वाभाविक और अकृतिम है। चरित्र-चित्रण में तो श्री वृन्दावनलाल जी सिद्धहस्त हैं।"

(२) श्री मैथिलीशरण जी गुप्त— "इस उपन्यास के रूप में मेरे बन्धु ने महारानी का ऐसा स्मारक बनाया है जो कि स्थान विशेष पर नहीं प्रत्येक घर में प्रतिष्ठित हो सकता है। पराधीनता को स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार करने वाली अपनी इस स्वाधीनता की सजीव मूर्ति के दर्शनार्थ मैं प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी से आग्रह पूर्वक अनुरोध करता हूँ।"

(३) दानवीर घनश्यामदास जी बिड़ला— "जितने हिन्दी के उपन्यास मैंने पढ़े हैं उनमें यह सर्वोच्चकोटि का है।"

(४) श्री रामकुमार वर्मा एम०ए०पी०एच०डी० प्रयाग विश्वविद्यालय— "झांसी की रानी उपन्यास आंखें गड़ा गड़ा कर पढ़ा। यह ऐसा रुचा कि खाने पीने तक की भी सुधि न रही। ऐतिहासिक तथ्य और कल्पना के सम्मिश्रण से यह उपन्यास ऐसा रुचा है कि आंखों के सामने तस्वीर सी खींच दी है। लक्ष्मीबाई पढ़के पहिले तो बाहें फड़कने लगीं, फिर आंखों से नीर बहने लगा।"

Under Translation Into Marathi, Gujrati, Telgu, Sindhi and Urdu.

Some Opinions.

Amrit Bazar Patrika:—Indeed one sometimes ıbegins to feel embarrased when one thinks that many sister languages of our National language can throw a serious challange to Hındi in the field of fiction. Happily Mr Vrindawan Lal Varma has been keeping the banner high in fiction for a long time now Jhansi-ki-Rani Laxmi bai may well be the crowning glory of the author's work in the field of literature. No literature in India has such a valuable contrıbution in the field of fiction. It will be a lasting tribute to Mr. Varma's craft as a historical novelist.

N. C. Mehta Retired I. C, S. The great Art Critic of India:—I have found Jhansi-ki-Rani Laxmibai exceedingly well written.

Doctor Shyama Prasad Mukerji Ex-President Hindu Mahasabha:— A grand theme handled in a remarkable manner.

Sind Observer: The best historical novel so far composed in Hindi. The book makes a fascinating reading and would compare favourably with the best historical novels by European authors

Independent Nagpur:—The book deserves to be translated into all ndian languages as well as in English, It is an excellent theme for filming also. Shriyut Vrindabanlal Varma has rendered unique service to Hindi literature. We owe him a debt of gratitude for giving us such a powerful book. He has rendered a great service to the country by presenting the glorious saga of the Ranee in the form of a story. It is a brilliant novel. The language is simple and effective and the interest of the reader never flags. The characters are living and powerful. The women characters are particularity powerful

Hitvada:—Liveliness is maintained throughout.

PRICE RS. 6.

MAYOOR PRAKASHAN :--Swadhin Press, Jhansi.

'कर्मवीर' खंडवा इतने असाधारण ढंग से यह ग्रन्थ लिखा गया है कि एक बार प्रारम्भ करके समाप्त करने पर ही पाठक छोड़ेगा। अभी अभी हाल की जितनी पुस्तकें निकली हैं उनमें 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' का सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ स्थान है। यह घर-घर, हर पुस्तकालय और हर शिक्षालय में पढ़ी जानी चाहिये।

'हंस' (मासिक)—इतिहास का इतना गहरा अध्ययन, इतने, परिश्रम और उदार विचार, इतनी ओजपूर्ण और प्रभावोत्पादक शैली, भाषा पर इतना अच्छा अधिकार और फिर इतना उच्च आदर्श चरित्र लेकर लिखा हुआ यह उपन्यास हर दृष्टि से स्तुत्य है।

'हिन्दुस्तान' दिल्ली—१४ वर्षों के अन्वेषण के बाद लिखित इस उपन्यास में उसने चार चाँद लगा दिए हैं–उपन्यास पढ़ने में रोचक प्राण-प्रद और प्रेरक है। प्रस्तुत पुस्तक गढ़-कुंडार आदि सब से बढ़कर है।

'स्वतन्त्र' झाँसी—५०० से अधिक पृष्ठ के इस बृहद ग्रन्थ में सर्वत्र रसमयता, सरलता, सुगमता, उदात्त राष्ट्रीयता और शोध का प्लावन है। काव्य में वैसे सुन्दरम् ही की आराधना विशिष्ट होती है। इसमें सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का सर्वतोभद्र समन्वय है। इस ग्रन्थ को समग्र पढ़ में भी जो अपनी आंखों को सूखा और गले को साफ रख सकें उन्हें या तो पूर्ण स्थितप्रज्ञ ही कहना पड़ेगा या फिर हृदयहीन पाषाण। कट्टर रूढ़िवादी भी इसे उसी भाँति निश्शंकता से अपने घर की महिलाओं को दे सकते हैं जैसे रामायण और महाभारत को।

'लहर'–उपन्यास इतना मनोमुग्धकारी, उत्फुल्लकारी तथा भावपूर्ण है कि हिन्दी ही नहीं, अन्य प्रांतीय भाषाओं में भी इसकी जोड़ की रचना कठिनाई से मिलेगी। श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने अनेक वर्षों के परिश्रम से लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध में एतिहासिक तथ्यों तथा जनश्रुतियों का संकलन करके कथानक तैयार किया है।

'विश्व भारती' शांति निकेतन, "हिन्दी में एतिहासिक उपन्यास लिखने में वर्मा जी अग्रगण्य हैं। यह पुस्तक भी उनकी बहुमूल्य कृतियों में एक है।"

लेखक ने उनकी नीति-निपुणता (स्त्री) सेना का निर्माण, उनके अद्भुत शौर्य का ऐसा ओजपूर्ण चित्रण किया है कि हृदय मुग्ध रह जाता है।

हम अपने प्रत्येक पाठक से सिफारिश करेंगे कि वह किसी भी प्रकार इस उपन्यास को हस्तगत कर अवश्य ही पढ़े। शिक्षावेत्ताओं का ध्यान भी इस उपन्यास की ओर जाना चाहिए। नवराष्ट्र निर्माण के लिए ऐसे ही उपन्यास पाठ्य-क्रम में रखे जाने के योग्य हैं।

Spark:—This is a truly national theme, also the grandest subject for Hindu Muslim Unity.

New Light: – Jhansi-ki-Rani Laxmibai is (without exaggeration) inspiring, nation-building, nerve tingling thrilling, and appealing to every Indian.

अचल मेरा कोई

लेखक—

श्री वृन्दावनलाल जी वर्मा

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, अभूतपूर्व, अतिरोचक सामाजिक रोमान्स

प्रेस में है।

सितम्बर तक प्रकाशित होगा } मयूर-प्रकाशन झांसी { मूल्य ३।)

स्वाधीन प्रेस, झांसी।

हमारे अन्य प्रकाशन
श्री वृन्दावनलाल जी वर्मा
—: की :—
अमर लेखनी द्वारा प्रणीत

कचनार— (ऐतिहासिक उपन्यास)

विन्ध्यखण्ड की घाटियों में दबी हुई अनेक भव्य गाथाओं में से एक। सर्वत्र मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का विकसित स्वरूप। भाषा-सौष्ठव, इतिहास, तथ्य और कल्पना का अनूठा समन्वय —

सजिल्द— पृष्ठ—४२० मूल्य ४॥)

मुसाहिबजू— (ऐतिहासिक उपन्यास)

उस युग की एक बात, जब भारतीय सामंतवाद आतंकवाद के धरातल पर उतर रहा था। महलों के झरोखों से भी वेदना की गर्म श्वासें निकला करती थीं। भड़कीले गहनों और कपड़ों में लिपटी रानियों के अन्तर भी तड़पन और टीस से दबे रहते थे—और वह भी आर्थिक-हीनता से सनी। बड़ा ही उथल पुथल पूर्ण कथानक है। फिर वर्मा जी की वर्णन शैली। पृष्ठ—१३० मूल्य १॥)

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई— (ऐतिहासिक उपन्यास)

इतिहास की अपूर्व खोज। पिछले पृष्ठों में पर्याप्त पढ़ चुके हैं।

सचित्र सजिल्द— पृष्ठ—५२५ मूल्य ६)

फूलों की बोली— (सामाजिक नाटक)

स्वर्ण मोह—जनित, स्वर्ण—रसायन की क्रिया किसी समय में ऐसा रोग रहा है, जो मानव हृदय की एक भयंकर भूल बनकर हमारे समाज में वर्षों तक सना रहा। समझे—सुलझे व्यक्ति तक इस द्विविधा में लुट गये हैं। अब भी इसका अवशिष्ट किसी न किसी रूप में बना हुआ है। इस नाटक में स्वर्ण मोह की विडम्बना का अच्छा चित्रण है। नारी-हृदय वेश्या में से भी झांकता है मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। मूल्य १)

राखी की लाज (सामाजिक नाटक)

नाम से ही विषय स्पष्ट है। सजीव सम्वाद और रोचकता इस नाटक की विशेषता है। मूल्य १)

बांस की फांस— (सामाजिक नाटक)

बांस की मार सही जा सकती है, परंतु बांस की फांस की कसक नहीं सही जाती । अति रोचक । मूल्य १)

लो, भाई पञ्चो ! लो !! (एकांकी नाटक)

गांवों में परमेश्वर के स्वरूप माने जाते हैं पंच और पंचायत, 'चतुरानन का दरबार' उनके अंचल में न्याय की पराकाष्ठा भी रहती है और दंभ भी । इस दिशा पर इस एकांकी में अच्छा व्यंग किया गया है । रोचकता से तो भरा पूरा है । मूल्य ।।।)

कोई समय था जब हमारे रंगमंच अटपटी हुंकारों से भरे संवादों से शोभित होते थे । अब इस स्वाधीनता के युगमें हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है विस्तृत प्रणाली से जनता की रुचिका परिमार्जन । और इस कार्य में वर्मा जी द्वारा लिखित नाटक अपूर्व हैं । ललित, साहित्यिक, रोचक और प्रभाव पूर्ण होने के साथ-साथ यह नाटक रंगमंच पर सुगमता पूर्वक अभिनय करने योग्य हैं ।

※ ग्रन्थकार की अन्य रचनायें ※

—: *प्रकाशित* :—

गढ़ कुण्डार (ऐति०-उपन्यास)	४)	★धीरे-धीरे-(व्यंग) मूल्य	१)
विराटा की पद्मिनी ,,	४)	★प्रत्यागत (सामाजिक-उपन्यास)	१।।)
कुण्डली चक्र सामाजिक ,,	२)	★प्रेम की भेंट ,,	१।।)
सङ्गम ,,	२)	★कभी न कभी ,,	२।।)
लगन (अपूर्व रोमांस) ,,	१)	★हृदय की हिलोर (गद्यात्मक)	१)

—: *शीघ्र ही प्रकाशित हो रही हैं* :—

आनंदघन (ऐतिहासिक-उपन्यास)	★मङ्गल सूत्र नाटक
सत्तरह सौ इकत्तीस ,,	★झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ,,
महादजी सिंधिया ,,	★कब तक ,,
राणा सांगा ,,	★नील कण्ठ ,,
अचल मेरा कोई सामाजिक-उपन्यास	★पीले हाथ तथा अन्य एकांकी नाटक
हंस-मयूर नाटक	★कलाकार का दण्ड (कहानियां)
पायल ,,	★दबे पांव (शिकारी कहानियां)

'मयूर-प्रकाशन' झांसी ।